पूर्णिका

(श्रीयन्त्रपूजापद्धतिप्रकाशः)

संकलनकर्ता

श्री स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वती

श्री स्वामी रामानन्द सरस्वती जी

।।ॐ श्री ॐ।।

पूर्णिका

(श्रीयन्त्रपूजापद्धतिप्रकाशः)

संकलनकर्ता

श्री स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वती

सत्यं साधना कुटीर

181, ग्रामः गौहरी माफी,

पोः रायवाला, ऋषिकेश.

ईपत्र-swsdsr@gmail.com

web: www.satyamsadhana.org

ग्रन्थनामः-**पूर्णिका (श्रीयन्त्रपूजापद्धतिप्रकाशः)**

प्रकाशक :- **श्री सत्यं साधना कुटीर समिति**, ऋषीकेश.

प्रथम संस्करण : मंगलवार, 14 जून2016,
गंगा दशहरा, ज्येष्ठ शुक्ल दशमी संवत् 2073.
प्रतियां : 800 (आठ सौ)
प्रधान सम्पादक : स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वती
सम्पादक मण्डल: स्वामी सर्वेशानन्द सरस्वती,
पं. ज्योतिप्रसाद उनियाल, और
चौ. विजयपाल सिंहजी.
अक्षर संयोजन : स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वती.

पुस्तक प्राप्ति स्थान-
श्री सत्यं साधना कुटीर समिति,
ग्राम-गौहरी माफी, पो. रायवाला, ऋषीकेश
जिला- देहरादून 249205 (उत्तराखण्ड)
दूरभाष संख्या:- 91-9557130251,
ईपत्र-swsdsr@gmail.com
web: www.satyamsadhana.org

सहयोग राशि : 50/- (पचास रुपये)

मुद्रक : सेमवाल प्रिंटिंग प्रेस, ऋषिकेश

प्रस्तावना

इस छोटी सी पुस्तिका का नाम '**पूर्णिका**' इसलिये रखा गया है कि यह '**श्रीयन्त्रपूजापद्धतिप्रकाशः**' नाम से पूर्व में प्रकाशित पुस्तक का पूरक अंक है। कैसे? जिन साधक, उपासक, जिज्ञासु, मुमुक्षु व सामान्य पाठकों ने '**श्रीयन्त्रपूजापद्धतिप्रकाशः**' को पढ़ा उन्होंने अपने अमूल्य सुझावों के साथ निम्न निवेदन प्रस्तुत किये हैं। **1.** संकेत मात्र किये गये कई विषयों पर स्पष्टीकरण। **2.** जिन चतुर्थ्यन्त मन्त्र तथा अन्य भी कुछ मन्त्रों का संकेत मात्र किया गया है। उन्हें पूरा दें ताकि जो व्याकरण नही पढ़े हैं उन्हें कठिनाई न हो। **3.** बाणादि मुद्रा, सुमुखादि मुद्रा जो कही गयी हैं उनमें आदि शब्द से कौन-कौन सी मुद्रा ग्रहण करनी है और उनके लक्षण व चित्र भी दें। 4. मूल ग्रन्थ में कुछ मुद्राओं का लक्षण है किन्तु चित्र नहीं और ज्वालिनी आदि कुछ मुद्राओं का उल्लेख है किन्तु उनके लक्षण व चित्र नहीं, अतः उन्हें प्रकाशित करें। 5. त्रैलोक्यमोहनकवच के अन्तिम श्लोक के छन्द और अर्थ को प्रकाशित करने हेतु निवेदन किया है।

इस प्रकार के और भी अनेक प्रश्नों व संशयों को पाठकों ने जो पूछा है उन सबका समाधान प्रकाशित करने का प्रयास इस '**पूर्णिका**' में किया गया है। श्रीविद्या की परम्परा में कुछ विषयों को गुप्त रखने के कारण आज कल के उपासकों, साधकों और पाठकों में उन विषयों की जिज्ञासा उत्पन्न होना उचित ही है। अतः इस '**पूर्णिका**' के द्वारा सबके प्रश्नों व संशयों के समाधान के साथ समस्त निवेदनों को पूरा करने का प्रयास किया गया है।

सभी पाठकों से विनम्र निवेदन है कि भविष्य में भी यदि किसी प्रकार की न्यूनता, अस्पष्टता व संशय आदि दिखाई दे तो अवश्य ही विना संकोच किये हमें बताने का कष्ट करें ताकि द्वितीय संस्करण में पूर्णिका सहित आप लोगों के समस्त सुझावों व जिज्ञासाओं का समाधान मूल ग्रन्थ में ही समाविष्ट व समायोजित किया जा सके।

मैं अपने प्रिय समस्त जागरूक साधकों, उपासकों, जिज्ञासुओं, मुमुक्षुओं व सामान्य पाठकों की भूरि भूरि प्रशंसा करता हूं कि उन्होंने अपने अमूल्य सुझाव व जिज्ञासा अभिव्यक्त कर मूल ग्रन्थ में वर्णित साधना/पूजा पद्धति का पूर्ण लाभ स्वयं उठाकर जनसामान्य तक पहुंचाने के मेरे उद्देश्य को पूरा होने में सहयोग किया है, इसके लिये मैं उन सभी को सहृदय व सप्रेम धन्यवाद देता हूं और भूरिशः उनका आभार अभिव्यक्त करता हूं। आपसे यह भी अपेक्षा करता हूँ कि भविष्य में भी आप सब इसी प्रकार सहयोग करते हुये जनकल्याण के पुण्य कर्मो में सहभागी होंगे। आप सभी को पुनः पुनः भूरिशः धन्यवाद।

पूर्णिका

1. भूमिका पृष्ठ संख्या. **X,** पंक्ति संख्या 11 में जोड़कर पढ़ें –

यह केवल पुराणों का ही सार नहीं बल्कि समस्त वेदों और स्मृतियों का भी सार है। वे **18 पुराणादि** निम्न प्रकार से हैं। देवीभागवत (3.1.2) में इस प्रकार संग्रह किया गया है –

'मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक्पृथक्।।'

अर्थात् मत्स्य, मार्कण्डेय–मद्वय; भविष्य, भागवत–भद्वय; ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त–ब्रत्रय; वराह, वायु, विष्णु, वामन–वचतुष्टय; अग्नि–अ, नारद–ना, पद्म–प, लिंग –लिं, गरुड़ –ग, कूर्म –कू और स्कन्द –स्क। किन्तु वाचस्पत्यम् में वायुपुराण के स्थान में शिव पुराण को लिया है। *(शक्तिमहिम्नःस्तोत्र पृष्ठ संख्या 20 में इस श्लोक को उद्धृत किया है किन्तु अर्थ करने में गलती हुई है, पाठक वर्तमान इस ठीक व्याख्या के अनुसार ग्रहण करे।)* वाचस्पत्यम् में **18 पुराण** :-

'ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा।
तथाऽन्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्।।
आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा।
दशमं ब्रह्मवैवर्तं लिंङ्गमेकादशं तथा।।
वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दं चात्र त्रयोदशम्।
चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पंचदशं तथा।।
मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डमष्टादशं तथा।।'

अर्थात् 1. ब्रह्म, 2. पद्म, 3. विष्णु, 4. शिव, 5. श्रीमद्भागवत, 6. नारद, 7. मार्कण्डेय, 8. अग्नि, 9. भविष्य, 10. ब्रह्मवैवर्त, 11. लिंग, 12. वराह, 13. स्कन्द, 14. वामन, 15. कूर्म, 16. मत्स्य, 17. गरुड और 18. ब्रह्माण्ड। कूर्मपुराण में **18 उपपुराणों** का वर्णन इस प्रकार है :-

'आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतः परम्।
तृतीयं नारदप्रोक्तं कुमारेण तु भाषितम्।।
चतुर्थं शिवधर्माख्यं साक्षान्नन्दीशभाषितम्।
दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदोक्तमतः परम्।।
कापिलं मानवं चैव तथैवोशनसेरितम्।
ब्रह्माण्डं वारुणं चाथ कालिकाह्वयमेव च।।
माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसंचयम्।
पराशरोक्तं प्रवरं तथा भागवतद्वयम्।।
इदमष्टादशं प्रोक्तं पुराणं कौर्मसंज्ञितम्।।'

अर्थात् 1. सनत्कुमार, 2. नरसिंह, 3. स्कन्द, 4. शिवधर्म, 5. आश्चर्य, 6. नारद, 7. कपिल, 8. मानव, 9. औशनस, 10. ब्रह्माण्ड, 11. वरुण, 12. कालिका, 13. माहेश्वर, 14. साम्ब, 15. सौर, 16. पराशर, 17. देवीभागवत और 18. महाभागवत। **18 स्मृति** :-

'मनुर्बृहस्पतिर्दक्षो गौतमोऽथ यमोऽङ्गिराः।
योगीश्वरः प्रचेताश्च शातातपपराशरौ।।
संवर्तोशनसौ शंखलिखितावत्रिरेव च।
विष्णवापस्तम्बहारिता धर्मशास्त्रप्रवर्तकाः।।'

अर्थात् 1. मनु, 2. बृहस्पति, 3. दक्ष, 4. गौतम, 5. यम, 6. आंगिरस, 7. योगीश्वर, 8. प्राचेतस, 9. शातातप, 10. पराशर, 11. संवर्त, 12. औशनस, 13. शंख, 14. लिखित, 15. अत्रि, 16. विष्णु, 17. आपस्तम्ब और 18. हारित। बृहन्मनु के अनुसार भी **18** हैं किन्तु **थोड़ा फर्क** है -

'विष्णुः पराशरो दक्षः संवर्तव्यासहारितः।
शातातपो वसिष्ठश्च यमापस्तम्बगौतमाः।।
देवलः शंखलिखितौ भारद्वाजोशनोऽत्रयः।
शौनको याज्ञवल्क्यश्च दशाष्टौ स्मृतिकारिणः।।'

अर्थात् 1. विष्णु, 2. पराशर, 3. दक्ष, 4. संवर्त, 5. व्यास, 6. हारित, 7. शातातप, 8. वसिष्ठ, 9. यम, 10. आपस्तम्ब, 11. गौतम, 12. देवल, 13. शंख व लिखित, 14. भारद्वाज, 15. औशनस, 16. अत्रि,

17. शौनक और 18. याज्ञवल्क्य। किन्तु याज्ञवल्क्य के अनुसार **20 स्मृतियां** हैं :-

'मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनरोऽङ्गिराः।
यमापस्तम्बसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती।।
पराशरो व्यासशंखौ लिखितो दक्षगौतमौ।
शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः।।'

पूर्वोक्त 18 के अलावा ये दो और है - 19. याज्ञवल्क्य और 20. कात्यायन। ग्रन्थान्तर में **21 स्मृति** :-

'वसिष्ठो नारदश्चैव सुमन्तुश्च पितामहः।
वसुः कृष्णाजिनिः सत्यव्रतो गार्ग्यश्च देवलः।।
जमदग्निर्भरद्वाजः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
आत्रेयश्छागलेयश्च मरीचिर्वत्स एव च।।
पारस्कर ऋष्यशृङ्गो बैजवापस्तथैव च।
इत्येते स्मृतिकर्तार एकविंशतिरीरिताः।।'

अर्थात् 1. वसिष्ठ, 2. नारद, 3. सुमन्तु, 4. यम, 5. वसु, 6. कृष्णाजिनि, 7. सत्यव्रत, 8. गार्ग्य, 9. देवल, 10. जमदग्नि, 11. भारद्वाज, 12. पुलस्त्य 13. पुलह, 14. क्रतु, 15. आत्रेय, 16. छागलेय, 17. मरीचि, 18. वत्स, 19. पारस्कर, 20. ऋष्यशृंग और 21. बैजवाप। ग्रन्थान्तर में **18 उपस्मृतियों** का भी वर्णन है :-

'जाबालिर्नाचिकेतश्च स्कन्दो लौगाक्षिकाश्यपौ।
व्यासः सनत्कुमारश्च सुमन्तुश्च पितामहः।।
व्याघ्रः कार्ष्णाजिनिश्चैव जातूकर्ण्यः कपिंजलः।
बौधायनश्च काणादो विश्वामित्रस्तथैव च।।
पैठानसिर्गोभिलश्च उपस्मृतिविधायकाः।।'

अर्थात् 1. जाबालि, 2. नाचिकेत, 3. स्कन्द, 4. लौगाक्षि, 5. कश्यप, 6. व्यास, 7. सनत्कुमार, 8. सुमन्तु, 9. भीष्म, 10. व्याघ्र, 11. कार्ष्णाजिनि, 12. जातूकर्ण्य, 13. कपिंजल, 14. बौधायन, 15. कणाद, 16. विश्वामित्र, 17. पैठानसि और 18. गोभिल।

2. पृष्ठ संख्या 05, पंक्ति संख्या 07 में 'पहाड़ की तलहटी' के बाद यह जोड़ लें -

...... मन्दिर, समुद्र का तट और अपना घर ......।

3. पृष्ठ संख्या. 05, पंक्ति संख्या 20 में जोड़ें -

आसन पर विचार: -

आसन के गुणों के बारे में कहा गया है -

'कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षश्रीर्व्याघ्रचर्मणि।
वंशासने व्याधिनाशः कम्बले दुःखमोचनम्।।'

अर्थात् कृष्णमृग के चर्म के आसन से ज्ञानसिद्धि, बाघ के चर्म के आसन से मोक्ष व ऐश्वर्य, बांस के आसन से व्याधि नाश और कम्बल के आसन से दुःख का नाश होता है।

'अभिचारे नीलवर्णं रक्तं वश्यादिकर्मणि।
शान्तिके कम्बलः प्रोक्तः सर्वेष्टं चित्रकम्बलम्।।'

अर्थात् अभिचार कर्म में काले रंग का आसन, वश्य आदि कर्म में लाल रंग और शान्तिक कर्म में कम्बल का आसन प्रयोग करने को कहा गया है। लेकिन पूर्वोक्त असम्भव हो तो सकल कर्मों में आसन केलिये चित्रकम्बल (रंगबिरंगे कम्बल) का प्रयोग करें।

'वंशासने तु दारिद्र्यं पाषाणे व्याधिसम्भवः।
धरण्यां दुःखसम्भूतिर्दौर्भाग्यं छिद्रिदारुजे।।
तृणे धनयशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः।
आयसं वर्जयित्वा तु कांस्यसीसकमेव च।।'

अर्थात् बांस के आसन से (व्याधि नाश होने पर भी) दारिद्र्य, पत्थर के आसन से व्याधि उत्पत्ति, जमीन को ही आसन के रूप में प्रयोग करने से दुःख उत्पत्ति, छेद युक्त छाल (सच्छिद्र वल्कल) के आसन से दौर्भाग्य, घास के आसन से धन और यश की हानि और पत्तों के आसन से चित्त अशान्त होगा। अतः इन आसनों का तथा लोहा, कांस्य व सीसा से बने हुये आसन का प्रयोग न करें। आचारमयूख में कहा है -

'दानमाचमनं होमं भोजनं देवतार्चनम्।
प्रौढ़पादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम्।।'

अर्थात् प्रौढ़पाद आसन में बैठकर आचमन, दान, होम, भोजन, देव पूजा, पितृ तर्पण और स्वाध्याय न करें।

(प्रौढ़पाद आसन का लक्षण आह्निककारिका में कहा है -

'आसनारूढपादस्तु जानुनोर्वाथ जङ्घयोः।
कृतावसक्थिको यश्च प्रौढ़पादः स उच्यते।।'

अर्थात् दाहिने अथवा बायें पैर को घुटने अथवा जंघा पर एक दूसरे पर लाद कर बैठने को प्रौढ़पाद आसन कहा गया है।) फिर किन आसनों में बैठना श्रेष्ठ है, इस विषय में देवीभागवत में कहा है -

'पद्मासनं स्वस्तिकं च भद्रं वज्रासनं तथा।
वीरासनमिति प्रोक्तं क्रमादासनपंचकम्।।'

अर्थात् सकल कर्म केलिये पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन और वीरासन क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठ पांच आसन हैं।

4. पृष्ठ संख्या 12, पंक्ति संख्या 08 में जोड़ें -

भोजनादि में ग्रास का परिमाण व दिशा का विधान -

विश्वामित्रकल्प के अनुसार -

'कुक्कुटाण्डप्रमाणं तु ग्रासमानं विधीयते।।'

अर्थात् मुर्गी के अण्डे के बराबर नाप के परिमाण को ग्रास का परिमाण विधान किया गया है। मनुस्मृति में भोजन ग्रहण (पाने/खाने) करने की दिशा के बारे में कहा है -

'आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्वी दक्षिणाभिमुखः।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋणं भुङ्क्ते उदङ्मुखः।।
पुत्रवांस्तु गृहे नित्यं नाश्नीयादुत्तरामुखः।।'

अर्थात् पूर्वाभिमुख होकर भोजन करने से आयु की वृद्धि होगी, दक्षिणाभिमुख हो तो यशस्वी होगा, पश्चिमाभिमुख हो तो ऐश्वर्य प्राप्ति होगी किन्तु उत्तराभिमुख हो तो वह ऋणी रहेगा। पुत्रवान् व्यक्ति को

अपने घर में कभी भी उत्तराभिमुख होकर भोजन नहीं करना चाहिये। प्रयोगपारिजात में भी कहा है -

'पितरौ जीवमानौ चेन्नाश्नीयाद्दक्षिणामुखः।
तयोस्तु जीवतोरेकस्तथैव नियमः स्मृतः।।
अनिशं मातृहीनानां यशस्यं दक्षिणामुखम्।।'

अर्थात् माता पिता दोनों जीवित हों अथवा दोनों में से एक भी जीवित हों तो दक्षिणाभिमुख होकर भोजन न करें। किन्तु माता से हीन यानि जिसकी माता स्वर्गवासी हो गई हो तो वह दक्षिणाभिमुख हो कर भोजन करें तो वह यशस्वी होगा।

5. पृष्ठ संख्या 15, पंक्ति संख्या 16 में जोड़ें -

'तर्पण और तर्पण के बराबर' के स्थान में ऐसा पाठ करें -

तर्पण और तर्पण का दशांश मार्जन यानि अभिषेक।

6. पृष्ठ संख्या 18, पंक्ति संख्या 01 में जोड़ें-

पूजोपचार पर विचार -

पंचोपचार (5):- जाबालि के अनुसार -

'ध्यानमावाहनं चैव भक्त्या यच्च निवेदनम्।
नीराजनं प्रणामश्च पंच पूजोपचारकाः।।'

अर्थात् ध्यान, आवाहन, प्रार्थना, आरती और नमस्कार। अथवा ज्ञानमाला के अनुसार - ' **गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं च ततः क्रमात्।।'**

अर्थात् गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य।

दशोपचारा (10):- ज्ञानमाला के अनुसार -

'अर्घ्यं पाद्यं चाचमनं स्नानं वस्त्रनिवेदनम्।
गन्धादया नैवेद्यान्ता उपचारा दश क्रमात्।।'

अर्थात् अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य।

षोडशोपचारा (16):- मूलग्रन्थ के पृष्ठ संख्या 17 में देखें।

चतुष्षट्युपचारा (64):- मूलग्रन्थ के पृष्ठ संख्या 204 में देखें।

7. पृष्ठ संख्या 31, पंक्ति संख्या 04 में जोड़ें -

प्रातःकाले दर्शनीयादर्शनीयपदार्थाः - आचारप्रदीपे -

'श्रोत्रियं सुभगां गां च अग्निमग्निचितं तथा।
प्रातरुत्थाय यः पश्येदापद्भ्यः स प्रमुच्यते।।'

अर्थात् प्रातः जगने के बाद श्रोत्रिय ब्राह्मण, सौभाग्यवती स्त्री, वैदिक अग्नि और आहिताग्नि त्रैवर्णिक का दर्शन करें उससे वह सकल आपदाओं से मुक्त होता है। अन्यग्रन्थ में भी कहा है -

'भारद्वाजमयूराणां चाषस्य नकुलस्य च।
प्रभाते दर्शनं श्रेष्ठं वामपृष्ठे विशेषतः।।'

अर्थात् प्रातःकाल अपने बायीं ओर से निकलता हुआ चक्रवाक (चातक) पक्षी, मयूर, नीलकण्ठ पक्षी और नेवला को देखें तो वह अत्यन्त शुभ है। इनके विपरीत नागदेव ने कहा है -

'पापिष्ठं दुर्भगं चान्धं नग्नमुत्कृत्तनासिकम्।
प्रातरुत्थाय यः पश्येत्तत्कलेरुपलक्षणम्।।
भल्लातकं कर्षफलं काकमार्जारमूषकम्।
क्लीबं च गर्दभं चैव न पश्येत्प्रातरेव हि।।'

अर्थात् प्रातः उठकर जो व्यक्ति पापी, दुर्भग, अन्धा, नग्न अथवा कोढी को देखें तो समझें की वह दर्शन लड़ाई का सूचक है। प्रातः उठकर भिलावे का पौधा, खाई में उत्पन्न जंगली कड़वा (जहरीला) फल, कौवा, बिल्ली, चूहा, नपुंसक और गदहा को नहीं देखना चाहिये। (**भल्लाटकं** भी पाठभेद है जिसका अर्थ है गंजा)।

8. पृष्ठ संख्या 31, पंक्ति संख्या 16 में जोड़ें -

ब्रह्ममुहूर्त का निर्णय - मनुस्मृति में कहा है कि -

'ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्ध्येत धर्मार्थावनुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च।।'

अर्थात् ब्रह्म मुहूर्त में उठकर ईश्वर, धर्म, अर्थ और शरीर के क्लेशों व उनके मूल कारणों का चिन्तन करें (वेदतत्त्वार्थ = ईश्वर)। ब्रह्ममुहूर्त का निर्णय विष्णुपुराण में दिया है -

'रात्रेः पश्चिमयामस्य मुहूर्तो यस्तृतीयकः।
स ब्राह्म इति विज्ञेयो विहितः स प्रबोधने।।
पंचपंच उषः कालः सप्तपंचारुणोदयः।
अष्टपंच भवेत्प्रातस्ततः सूर्योदयः स्मृतः।।'

अर्थात् रात्री के अन्तिम याम (अन्तिम 3 घण्टा) के तीसरे मुहूर्त को ब्रह्म मुहूर्त समझें, वह समय उठने केलिये विहित है। यानि 6 बजे को सूर्यास्त माने तो 6 से 9 प्रथम याम, 9 से 12 द्वितीय याम, 12 से 3 तृतीय याम और 3 से 6 अन्तिम याम माना जायेगा, उसमें 45 मिनट का मुहूर्त मानकर तीसरा मुहूर्त होगा 4.30 से 5.15 बजे का समय - यही ब्रह्म मुहूर्त है। उसके बाद के 25 कला यानि 10 मिनट (5.16 - 5.25) उषाकाल है, तदनन्तर 35 कला यानि 14 मिनट (5.26 - 5.39)अरुणोदय काल है, उसके बाद का 40 कला यानि 16 मिनट (5.40 - 5.55) प्रातः काल है, तत्पश्चात्काल को सूर्योदय काल कहा गया है।

रत्नावली में ब्रह्ममुहूर्त में न उठने के दोष के बारे में कहा है -

'ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी।
तां करोति द्विजो मोहात्पादकृच्छ्रेण शुध्यति।।'

अर्थात् ब्रह्म मुहूर्त में जो निद्रा है वह पुण्य को क्षय करनेवाली है, लेकिन मोहवशात् जो द्विज उस (ब्रह्म मुहूर्त) में सोता है वह पादकृच्छ्रव्रत (1 पाद यानि 1 पाव, अर्थात् सूर्यास्त तक 1 पाव जल पीकर ही रहना है) से ही शुद्ध होता है।

9. पृष्ठ संख्या 31, पंक्ति संख्या 26 में जोडें -

शौचकरणे दिशानिर्णयः - यमस्मृति में कहा है कि -

'प्रत्यङ्मुखस्तु पूर्वाह्नेऽपराह्ने प्राङ्मुखस्तथा।
उदङ्मुखस्तु मध्याह्ने निशायां दक्षिणामुखः।।'

अर्थात् पूर्वाह्न में यानि सूर्योदय से 10 बजे तक पश्चिमाभिमुख, मध्याह्न में यानि 10 बजे से 2 बजे तक उत्तराभिमुख, अपराह्न में यानि 2 बजे से सूर्यास्त तक पूर्वाभिमुख और रात्रि में दक्षिणाभिमुख बैठकर शौच कर्म करें। मनुस्मृति में कहा है –

'छायायामन्धकारे च रात्रावहनि वा द्विजः।
यथासुखं मुखं कुर्यात्प्राणबाधाभयेषु च।।'

अर्थात् छाया, अन्धकार, रात्रि अथवा दिन तथा प्राणबाधा, रोगबाधा एवं भय काल में द्विज को चाहिये कि वह अपनी अनुकूलता के अनुसार मुख कर बैठके शौच कर्म करें।

शौचकाले यज्ञोपवीत धारणनिर्णयः – आह्निककारिका में –

'मूत्रे तु दक्षिणे कर्णे पुरीषे वामकर्णके।
उपवीतं सदा धार्यं मैथुने तूपवीतिवत्।।'

अर्थात् मूत्रविसर्जन काल में दाहिने कान पर, मलत्याग काल में बायें कान पर यज्ञोपवीत को धारण करे और मैथुन काल में उपवीति ही रहे। सायणीय में कहा है –

'मलमूत्रं त्यजेद्विप्रो विस्मृत्यैवोपवीतधृक्।
उपवीतं तदुत्सृज्य धार्यमन्यन्नवं तदा।।'

अर्थात् जो द्विज यदि कान पर डालना भूलकर मल मूत्र को त्यागता है तो वह उसी समय उस धारित यज्ञोपवीत को विधिवत् उत्सर्जन कर नया यज्ञोपवीत धारण करे।

10. पृष्ठ संख्या 32, पंक्ति संख्या 11 में जोड़ें –

कुल्ला (गण्डूष) कर शुद्ध होना –आश्वलायन में –

'मूत्रे(4) पुरीषे(12) भुक्त्यन्ते(16) रेतःप्रस्रवणे(8) तथा।
चतुरष्ट द्विषट् द्व्यष्ट गण्डूषैः शुद्धिमाप्नुयात्।।'

अर्थात् मूत्र त्यागने पर 4 बार, मल त्याग करने पर 12 बार, भोजन के बाद 16 बार और स्वप्न दोष होने पर 8 बार कुल्ला करने से ही द्विज शुद्ध होता है।

11. पृष्ठ संख्या 32, पंक्ति संख्या 13 में जोड़ें –
मौनपूर्वक करने योग्य कर्म – हारीतस्मृतिः –

'उच्चारे मैथुने चैव प्रस्रावे दन्तधावने।
श्राद्धे भोजनकाले च षट्सु मौनं समाचरेत्।।'

अर्थात् मल–मूत्र त्याग, मैथुन, स्वप्नदोष, दन्तधावन, श्राद्ध और भोजन काल इन छः कर्म करते वक्त मौन आचरण करें। आङ्गिरसस्मृतिः –

'सन्ध्ययोरुभयोर्जाप्ये भोजने दन्तधावने।
पितृकार्ये च दैवे च तथा मूत्रपुरीषयोः।।
गुरूणां सन्निधौ दाने योगे चैव विशेषतः।
एतेषु मौनमातिष्ठन्स्वर्गं प्राप्नोति मानवः।।'

अर्थात् जो मनुष्य दोनों सन्ध्यावन्दन काल में तथा जप, भोजन, दन्तधावन, श्राद्ध, देवपूजन, मल–मूत्र त्याग, दान और योगसाधना काल में एवं गुरु के सान्निध्य में मौन रहता है वह निश्चित ही स्वर्ग को प्राप्त करेगा।

12. पृष्ठ संख्या 32, पंक्ति संख्या 13 में जोड़ें – **दन्तधावन विधिः** –
विश्वामित्रकल्प में दातून प्रार्थना मन्त्र इस प्रकार दिया है –

'आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशून्वसूनि च।
ब्रह्म प्रज्ञां मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते।।'

अर्थात् हे वनस्पते! तुम मुझे आयु, बल, यश, वर्चस्व, सन्तान, पशु, धन, प्रज्ञा, मेधा और वेद को दो। चकार अनुक्त सकल शुभ के समुच्चय केलिये है। दन्तधावन में दिशाज्ञान –

'प्राङ्मुखस्य धृतिः सौख्यं शरीरारोग्यमेव च।
दक्षिणेन तथा कष्टं पश्चिमेन पराजयः।।
उत्तरेण गवां नाशः स्त्रीणां परिजनस्य च।
पूर्वोत्तरे तु दिग्भागे सर्वान्कामानवाप्नुयात्।।'

अर्थात् दन्त शोधन करते समय पूर्वाभिमुख हो तो उसे धृति, सुख और शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है तथा ईशानकोणाभिमुख हो तो समस्त कामनायें पूरी होंगी। यदि दक्षिणाभिमुख हो तो कष्ट, पश्चिमाभिमुख हो

तो पराजय, उत्तराभिमुख हो तो गौ आदि धन सहित स्त्री और परिजनों का नाश प्राप्त होता है।

पारस्करगृह्यसूत्र (2.6.17) में दन्तधावन मन्त्र इस प्रकार दिया है –

'अन्नाद्याय व्यूहध्वꣳसोमो राजाऽयमागमत्।
स मे मुखं प्रमार्क्ष्यते यशसा च भगेन च।।'

इति मन्त्रेणौदुम्बरेण दन्तान्धावेत्। मुखप्रक्षालन करके गणेश, गौ, सूर्य, तुलसी, नारायण (विष्णु), देवी, शिव, राम, नवग्रह, इत्यादि का स्तुति द्वारा स्मरण करें।

13. पृष्ठ संख्या 32, पंक्ति संख्या 26 में जोड़ें –

उष्णोदकस्नानविधिः – यमस्मृति में कहा है –

'आप एव सदा पूतास्तासां वह्निर्विशोधकः।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु उष्णाम्भः पावनं स्मृतम्।।'

यद्यपि जल अपने आप में पवित्र है फिर भी अग्नि उसका शोधक है। इसलिये सभी काल में गरम जल ही पवित्रकारक है, अतः सालभर गरम जल से ही नहाना चाहिये। मारीचकल्प में कहा है –

'भूमिष्ठमुद्धृतं वापि शीतमुष्णमथापि वा।
गांगं पयः पुनात्येव पापमामरणात्कृतम्।।'

अर्थात् भूमि (कुंआ) में स्थित अथवा रेहट (पम्प आदि) से उद्धृत जल ठण्डा हो अथवा गरम हो आमरण पर्यन्त सेवन करने (स्नानादि में प्रयोग करने) से वह गंगा जल के समान पापों का नाश कर देता है। अन्यत्र भी कहा है –

'सरित्सु देवखातेषु तीर्थेषु नदीषु च।
क्रियास्नानं समुद्दिष्टं स्नानं तत्रामलाः क्रियाः।।'

अर्थात् झरने, मन्दिर का कुंआ, तीर्थ और नदी में ही क्रिया (कर्म) और स्नान करने का विधान है। उनमें व उनसे कृत कर्म व स्नान अत्यन्त पवित्र कारक होता है। तथा

'वाप्यां कूपे तडागे वा नद्यां वा चोष्णवारिणा।
प्रातःस्नानं सदा कुर्यादुष्णेनैव सदातुरः।।'

अर्थात् बावड़ी, कुंआ, नदी, तालाब अथवा गरम जल से ही प्रातः स्नान करना चाहिये। आतुर यानि रोगी हो तो सदा गरम जल से ही स्नान करें।

14. पृष्ठ संख्या 35, पंक्ति संख्या 21 में जोड़ें –

दीपदिशा विचारः – मारीचकल्प में कहा है कि –

'आयुर्दः प्राङ्मुखो दीपो धनदः स्यादुदङ्मुखः।
प्रत्यङ्मुखो दुःखदोऽसौ हानिदो दक्षिणामुखः।।'

पूर्वाभिमुख दीप आयु प्रदायक और उत्तराभिमुख धन दायक होता है। किन्तु पश्चिमाभिमुख दीप दुःखदायक और दक्षिणाभिमुख दीप हानि कारक होता है। यह विधि नित्यदीप के विषय में है, अतः कार्तवीर्यादि के लिये प्रयुक्त विशेष दीप को पश्चिमाभिमुख रखा जाता है और शनि, यमराज आदि केलिये दक्षिणाभिमुख रखा जाता है।

15. पृष्ठ संख्या 41, पंक्ति संख्या 13 में इस पंक्ति को जोड़ कर पढ़ें –

इस प्रकार आवाहन करने के बाद प्रतिष्ठा, शेष उपचार पूर्वक पूजन कर मण्डल पर कलश स्थापना करे।

16. पृष्ठ संख्या 53, पंक्ति संख्या 14 में जोड़ें –

5.1-1 आवाहनी मुद्रा – मूलग्रन्थ के पृष्ठ संख्या 41 में देखें। (मूलग्रन्थ के पृष्ठसंख्या 344 चित्रसंख्या 5.1 को देखें।) उसके बाद इन्हें जोड़ें।

5.1-2 गन्धार्पण मुद्रा –

'मध्यमानामिकांगुष्ठांगुल्यग्रेण पार्वति।
दद्याच्च विमलं गन्धम्मूलमंत्रेण साधकः।।'

अर्थात् हे पार्वति! मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये साधक अपने दाहिने हाथ के अंगूठे, मध्यमा और अनामिका अंगुलियों के अग्रभाग से शुद्ध गन्ध को अर्पित करें। (पृष्ठ संख्या 54 में चित्र संख्या 5.1-2 को देखें)

5.1-3 पुष्पार्पण मुद्रा –

'अंगुष्ठतर्जनीभ्यां च पुष्पं चक्रे निवेदयेत्।'

अर्थात् अंगूठा और तर्जनी अंगुलि (शेष अंगुलियां बाहर की ओर सीधे रखें) से पुष्प को श्रीचक्र/देवता पर अर्पण करें। (पृष्ठ संख्या 54 में चित्र संख्या 5.1-3 को देखें।)

5.1-4 धूपार्पण मुद्रा -

'मध्यमानामिकाभ्यान्तु मध्यपर्वणि देशिकः।
अंगुष्ठाग्रेण देवेशि धृत्वा धूपं निवेदयेत्।।
उत्तोलनं त्रिधा कृत्वा गायत्र्या मूलयोगतः।'

अर्थात् हे देवेशि! साधक अपने दाहिने हाथ की मध्यमा और अनामिका अंगुलि के मध्य पर्व पर अंगूठे से धूप को धारणकर गायत्री मन्त्र और मूल मन्त्र से तीन बार श्रीचक्र/देवता के सामने आरती के समान अंगुलि घुमाते हुये समर्पित करें। (पृष्ठ संख्या 54 में चित्र संख्या 5.1-4 को देखें।)

5.1-5 दीपार्पण मुद्रा -

'दीपं समर्पयेद्देवीम्मुद्रया ज्ञानसंज्ञया।
अंगुष्ठतर्जनीयोगात् ज्ञानमुद्रा प्रकीर्तिता।।'

अर्थात् देवी के समक्ष ज्ञान मुद्रा से दीप को समर्पित करें। अंगुष्ठ और तर्जनी के योग से ज्ञान मुद्रा होती है। (इसी पूर्णिका के पृष्ठ संख्या 54 चित्र संख्या 5.1-5 को देखें।) ग्रन्थान्तर में उक्त ज्ञानमुद्रा के लक्षण व अर्थ को मूलग्रन्थ के पृष्ठ संख्या 46 में देखें तथा इसके चित्र को मूलग्रन्थ के ही पृष्ठसंख्या 345 चित्रसंख्या 5.18 को देखें।

5.1-6 नैवेद्यार्पण मुद्रा -

'तत्त्वाख्यमुद्रया देवीं नैवेद्यं निवेदयेत्।'

अर्थात् तत्त्वमुद्रा से देवी को नैवेद्य अर्पण करें। तत्त्वमुद्रा के लक्षण व अर्थ को मूलग्रन्थ के पृष्ठ संख्या 48 में देखें। (पृष्ठ संख्या 54 चित्रसंख्या 5.1-6 को देखें)।

5.7b धेनु मुद्रा - ग्रन्थान्तर में इस प्रकार है -

'दक्षानामसमायुक्ता वामहस्तकनिष्ठिका।
वामानामसमायुक्ता दक्षपाणिकनिष्ठिका।।
दक्षस्य मध्यमाक्रान्ता दक्षहस्तस्य तर्जनी।
सम्युक्तौ कारयेद्विद्वानंगुष्ठावुभयोरपि।
धेनमुद्रा निगदिता गोपिता साधकोत्तमैः।'

अर्थात् विद्वान् साधक बायें हाथ की कनिष्ठिका को दाहिने हाथ की अंगुलियों से स्पर्श न करते हुये तथा दाहिने हाथ की कनिष्ठिका को बायें हाथ की अंगुलियों से स्पर्श न करते हुये दाहिने हाथ की मध्यमा से दाहिने हाथ की तर्जनी को दबाकर दोनों अंगूठों को संयुक्त करें, साधकोत्तमों के द्वारा रक्षित इस मुद्रा को धेनु मुद्रा कहा गया है। (पृष्ठ संख्या 54 चित्र संख्या 5.7b को देखें।)

5.8 महामुद्रा - इसका लक्षण मूलग्रन्थ के पृष्ठसंख्या 43 में है। (इसके चित्र के लिये इस पूर्णिका के पृष्ठ संख्या 55 में चित्र संख्या 5.8 को देखें।)

5.9, 5.10a, 5.10b, 5.11a, 5.11b, 5.13-

मूलग्रन्थ के पृष्ठसंख्या 43, 44 और 45 में क्रम से कुम्भ मुद्रा (कलश मुद्रा), कूर्म मुद्रा, अस्त्रमुद्रा और शंख मुद्रा के लक्षण दिये गये हैं। (उनके चित्रों को इस पूर्णिका के पृष्ठ संख्या 55 एवं 56 में चित्र संख्या उक्त क्रम संख्या के अनुसार देखें।)

5.16, 5.19, 5.28-9, 5.29, 5.30a, 5.30b -

मूल ग्रन्थ के पृष्ठसंख्या 45 व 46 में क्रमशः पंकज मुद्रा और चिन्मुद्रा के लक्षण दिये गये हैं। (उनके चित्रों को इस पूर्णिका के पृष्ठ संख्या 56 में देखें।) तथा मूलग्रन्थ के पृष्ठसंख्या 52 और 53 में महोयोनि मुद्रा, गुरुड़ मुद्रा, हंसी मुद्रा और सूकरी मुद्रा के लक्षण उल्लिखित हैं। (इनके चित्रों को इस पूर्णिका के पृष्ठ संख्या 56 व 57 में देखें।)

5.31-1 बाण मुद्रा -

'यथाहस्तगता बाणस्तथा हस्तं कुरु प्रिये।
बाणमुद्रेयमाख्याता रिपुवर्गनिकृन्तनी।।'

अथवा वामकेश्वरतन्त्र में -

'दक्षमुष्टिस्तु तर्जन्या दीर्घया बाणमुद्रिका।'

अर्थात् हे प्रिये! हाथ में बाण को पकड़े हुये जैसे, अपने हाथ को धारित करें, इसे शत्रुओं को नाश करने वाली बाण मुद्रा कहा गया है। अथवा दाहिने हाथ की तर्जनी को बाहर की ओर सीधे रख कर शेष अंगुलियों से

मुट्ठि बांधे, इसे बाण मुद्रा कहते हैं। (मूलग्रन्थ के पृष्ठ संख्या 349 में चित्र संख्या 5.31 को देखें)।

5.31-2 अंकुश/महांकुशामुद्रा का लक्षण दक्षिणामूर्ति संहिता (57-60-63) में इस प्रकार बताया गया है -

'सम्मुखौ तु करौ योज्यै मध्यमागर्भगेऽनुजे।
तर्जनीभ्यां बहिर्युक्ते अनामे सरले कुरु।।
मध्यमानखदेशे तु ततोऽगुष्ठौ तु दण्डवत्।
उन्मनी नाम मुद्रा तु पंचमी परिकीर्तिता।
एतस्या एव मुद्रायास्तर्जन्यौ मध्यमानुजे।।
कुर्यान्महांकुशाकारौ मुद्रेयं तु महांकुशा।'

अर्थात् दोनों हाथों को आमने सामने जोड़कर मध्यमा को गर्भ में रखें। दोनों तर्जनी बाहर की ओर कर अनामिका को सीधी रखें। किन्तु मध्यमा के नख देश में अंगूठे को दण्डवत् रखें। यह उन्मनी मुद्रा है। इसी मुद्रा की दोनों तर्जनियों को मध्यमा के साथ रखें तो वह महांकुशा मुद्रा होती है। (पृष्ठ संख्या 57 में चित्र संख्या 5.31-2a और b को देखें।

5.31-3 गदा मुद्रा -

'वाममुष्ट्यन्तरेऽगुष्ठे दक्षिणे सरलांगुलीः।
वामांगुष्ठः स्पृशेदग्रे योजितः सरलोदरः।।
अन्योन्याभिमुखौ हस्तौ कृत्वा तु ग्रथितांगुलीः।
अंगुल्यौ मध्यमे भूयः सुलग्ने सुप्रसारिते।।
गदामुद्रेयमुदिता देव्याः सन्तोषवर्धिनी।
प्रकीर्तिता सदा सैषा भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी।।'

अर्थात् दोनों हाथों को आमने-सामने रखते हुये बायीं मुट्ठि में दाहिने अंगूठे को बन्द करके दाहिने हाथ की तर्जनी और अनामिका अंगुलियों से बायें हाथे के अंगूठे के अग्र भाग को स्पर्श करें। दोनों मध्यमा अंगुलियों के एक दूसरे के अग्रभाग को स्पर्श करते हुये ऊपर की ओर रखें। इस प्रकार ग्रथित अंगुलियों को गदा मुद्रा कहा गया है जो देवी के सन्तोष को

बढ़ानेवाली है और साधक को भोग व मोक्ष देनेवाली है। (पृष्ठ संख्या 57 में चित्र संख्या 5.31-3 को देखें)।

5.31-4 पाशिनी/पाशा मुद्रा-

'सर्वांगुलयः सरला कृत्वा करयोश्च कर्णौ।
व्यत्ययेन पिधानं च कुर्यात्सा पाशिनी मता।।'

अर्थात् सभी अंगुलियों को सीधे रखते हुये व्यत्यय से यानि दाहिने हाथ से बायें कान और बायें हाथ से दाहिने कान को ढ़कें, यह पाशिनी मुद्रा है। अथवा-

'वाममुष्टिस्थतर्जन्या दक्षमुष्टिस्थतर्जनीम्।
संयोज्यांगुष्ठकाग्राभ्यां तर्जन्यग्रस्वके क्षिपेत्।।
एषा वा पाश मुद्रेति विद्वद्भिः परिकीर्तिता।।'

अर्थात् बायीं मुट्ठी में स्थित तर्जनी से दाहिनी मुट्ठी में स्थित तर्जनी को मिलावें और दोनों अंगूठों के अग्रभाग से तर्जनियों के अग्र भाग को स्पर्श करें। इसे विद्वान लोग पाश मुद्रा कहते हैं। (पृष्ठ संख्या 57 में चित्रसंख्या 5.31-4a व b को तथा पृष्ठ संख्या 58 में 5.31-4c को देखें।)

5.31-5 अक्षमाला मुद्रा -

'अंगुष्ठं तर्जन्यग्रेषु ग्रथयित्वांगुलित्रयम्।
प्रसारयेदक्षमाला मुद्रेयं परिकीर्तिता।।'

अर्थात् अंगूठे को तर्जनी के अग्रभाग में ग्रथन कर शेष अंगुलियों को फैलाने को अक्षमाला मुद्रा कहा गया है। (पृष्ठ संख्या 58 में चित्रसंख्या 5.31-5 को देखें।)

5.31-6 परशु मुद्रा -

'करे करं तु करयोस्तिर्यक्संयोज्यांगुलीः।
संहताः प्रसृताः कुर्यान्मुद्रेयं परशोर्मता।।'

अर्थात् हाथ पर हाथ रखकर दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर टेढ़ा मिलाकर फैलाने पर परशु मुद्रा मानी गयी है। (पृष्ठ संख्या 58 में चित्र संख्या 5.31-6 को देखें)।

5.31-7 वज्र/कुलिश मुद्रा -

'दक्षिणहस्तं च मुष्टिं बद्ध्वा च क्षेपणाकारं।
कुर्यान्मुद्रा सा कुलिशसंज्ञिका भयकारिणी।।'

अर्थात् दाहिने हाथ की मुट्ठि बांधकर फेंकने जैसे धारण करें, उसे सबको भय देने वाली कुलिश/वज्र मुद्रा कहते हैं। (पृष्ठ संख्या 58 में चित्रसंख्या 5.31-7 को देखें)।

5.31-8 धनुर्मुद्रा -

'वामस्य मध्यमाग्रन्तु तर्जन्यग्रेण योजयेत्।
अनामिकां कनिष्ठिकां च तस्यांगुष्ठेन पीडयेत्।।
दर्शयेद्वामके स्कन्धे धनुर्मुद्रेयमीरिता।।

' अथवा

'बाहुमूलं स्पृशेत्तेन बाह्वग्रेणैव साधकः।
धनुर्मुद्रा यशःकीर्तिबलवीर्यविवर्धिनी।।'

अर्थात् बायें हाथ की मध्यमा के अग्र भाग को तर्जनी के अग्र भाग से मिलाये और अनामिका व कनिष्ठिका को अंगूठे से दबाते हुये बायें कन्धे की ओर दर्शाये, यह धनुर्मुद्रा है। अथवा बायें हाथ के अग्र भाग से बायीं बाहु का स्पर्श करें, यह धनुर्मुद्रा है जो यश, कीर्ति, बल और वीर्य (सामर्थ्य) को बढ़ाती है। (पृष्ठ संख्या 58 में चित्र संख्या 5.31-8 को देखें)

5.31-9 कुण्डिका मुद्रा -

'करद्वयं यदा सुभ्रु कुण्डाकारं भवेत्तदा।
कुण्डिकेति महामुद्रा कथिता पूर्वसूरिभिः।।'

अर्थात् हे सुभ्रु! पूर्व आचार्यो ने दोनों हाथों को कुण्डाकार में धारण करने को कुण्डिका मुद्रा नामक एक महान् मुद्रा कहा है। (पृष्ठ संख्या 58 में चित्र संख्या 5.31-9 को देखें)।

5.31-10 दण्ड मुद्रा -

'मुष्टिं कुर्याद्दक्षहस्तस्य दर्शयेद्दण्डमुद्रिका।।'

अर्थात् दाहिने हाथ की मुट्ठि बांधकर दण्ड देने जैसे दर्शाये, यह दण्ड मुद्रा है। (पृष्ठ संख्या 59 में चित्र संख्या 5.31-10 को देखें)।

5.31-11 खड्ग (असि) मुद्रा -

'कनिष्ठिकानामिके बद्ध्वा स्वांगुष्ठेनैव दक्षतः।
शिलष्टांगुली तु प्रसृत्य सन्दृष्टे खड्गमुद्रिका।।'

अर्थात् दाहिने हाथ की कनिष्ठिका और अनामिका को अंगूठे से बांधकर शेष अंगुलियों को फैलाकर दर्शाने को खड्ग मुद्रा कहते हैं। (पृष्ठ संख्या 59 में चित्र संख्या 5.31-11 को देखें)।

5.31-12 चर्म (ढाल) मुद्रा -

'वामहस्तं यदा तिर्यक्कृत्वा चैव प्रसार्य च।
आकुंचितांगुलीः कुर्याच्चर्ममुद्रेयमीरिता।।'

अर्थात् बायें हाथ को थोड़ा टेढ़ा करके फैलायी हुयी अंगुलियों को थोड़ा संकुचित करें, इसे चर्म/ढ़ाल मुद्रा कहा गया है। (पृष्ठ संख्या 59 में चित्र संख्या 5.31-12 को देखें)।

5.31-13 घण्टा मुद्रा -

'वाममुष्टिभ्रामणं च घण्टामुद्रेति कीर्तिता।'

अर्थात् बायीं मुट्ठि को घुमाने को घण्टा मुद्रा कहा गया है। (पृष्ठ संख्या 59 में चित्र संख्या 5.31-13 को देखें)।

5.31-14 सुराभाजन मुद्रा -

'मुष्ट्योरूर्ध्वौ कृतांगुष्ठे तर्जन्यग्रेषु विन्यसेत्।
सर्वरक्षाकरी ह्येषा कथिता सुरभाजना।।'

अर्थात् मुट्ठियों के बाहर स्थित अंगूठे को तर्जनी के अग्र भाग में रख कर ऊपर धारण करे यह सब प्रकार से रक्षा करनेवाली सुराभाजन मुद्रा है। (पृष्ठ संख्या 59 में चित्र संख्या 5.31-14 को देखें)।

5.31-15 त्रिशूल मुद्रा -

'अंगुष्ठेन कनिष्ठान्तु बद्ध्वा शिलष्टांगुलित्रयम्।
प्रसारयेत्त्रिशूलाख्या मुद्रैषा परिकीर्तिता।।'

अर्थात् अंगूठे से कनिष्ठिका को बांध कर शेष तीन अंगुलियों को फैलाये इसे त्रिशूल मुद्रा नाम से कहा गया है। (पृष्ठ संख्या 59 में चित्र संख्या 5.31-15 को देखें।)

5.31-16 सुदर्शनचक्र (चक्र) मुद्रा -

'हस्तौ तु संमुखौ कृत्वा सुलग्नौ सुप्रसारितौ।
कनिष्ठांगुष्ठकौ नग्नौ मुद्रैषा चक्रसंज्ञिता।।'

अर्थात् दोनों हाथों को आमने सामने जोड़े हुये तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अंगुलियों को फैला कर कनिष्ठिका और अंगूठे का परस्पर स्पर्श न करे यह चक्र / सुदर्शनचक्र नाम की मुद्रा है। (पृष्ठ संख्या 60 में चित्र संख्या 5.31-16 को देखें)।

5.31-17 हल मुद्रा -

'अधोमुखा वाममुष्ठिकशा वै दक्षिणे करे।
हलमुद्रेति विख्याता कामदा सर्वकर्मसु।।'

अर्थात् बार्यी मुट्ठि से पकड़े हुये दाहिने हाथ को नीचे की ओर दिखाने पर हल मुद्रा होती है जो सभी कर्मो में अभीष्ट फल देनेवाली होती है। (पृष्ठ संख्या 60 में चित्र संख्या 5.31-17 को देखें।

5.31-18 मुसल मुद्रा -

'मुष्टिं कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम्।
कुर्यान्मुसलमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी।।'

अर्थात् दोनों हाथों की मुट्ठि बांधकर बार्यी मुट्ठि पर दाहिनीं मुट्ठि रखें यह समस्त विघ्नों की नाशक मुसल मुद्रा है। (पृष्ठ संख्या 60 चित्र संख्या 5.31-18 को देखें।

5.31-19 वरद मुद्रा -

'संश्लिष्टा सर्वांगुलयः सरला चोर्ध्वधारिता।
वरदमुद्रा चैवेयं सर्वसौभाग्यदायिनी।।'

अर्थात् अंगुलियों को परस्पर संबद्ध रखते हुये ऊपर की ओर सीधा रखें (आशीर्वाद देने के समान छाती के बराबर ऊंचाई तक उठायें) यह समस्त सौभाग्य देनेवाली वरद मुद्रा है। (पृष्ठ संख्या 60 चित्र संख्या 5.31-19 को देखें)।

5.31-20 कृपा मुद्रा -

'सैवाधोधारिता चैव कृपामुद्रेति गीयते।
सर्वलक्ष्मीप्रदायिका सर्वाबाधाप्रभंजिका।।'

अर्थात् पूर्वोक्त मुद्रा को नीचे की ओर (जांघ के पास) धारण करें यह समस्त बाधाओं को नाश कर समस्त प्रकार की लक्ष्मी को देनेवाली कृपा मुद्रा है। (पृष्ठ संख्या 60 चित्र संख्या 5.31-20 को देखें)।

इनके साथ शंखमुद्रा 5.13 (मूलग्रन्थ के पृष्ठ संख्या 45 को देखें), पंकज(पद्म)मुद्रा 5.16 (मूलग्रन्थ के पृष्ठ संख्या 45 को देखें), शक्तिमुद्रा 5.33 (इसी पूर्णिका में देखें) और मुद्गर मुद्रा 5.34 इसी पूर्णिका में देखें) को मिलाकर बाणादि मुद्रा कुल 24 होती हैं।

5.32 शिरो/मुण्ड मुद्रा-

'अंगुष्ठतर्जनीमध्यमानां कुर्याच्चाग्रं स्पृष्ट्वा।
अनामिकां तेषामन्तः सरलां च कनिष्ठिकां।।'

अर्थात् अंगूठा, तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों के अग्रभाग को स्पर्शकर अनामिका को मोड़के अंगूठे की जड़ में रखें तथा कनिष्ठिका को बाहर की ओर सीधे रखें, यह शिरो मुद्रा है। अथवा-

'अन्तरांगुष्ठमुष्टिन्तु कृत्वा वामकरस्य च।
मध्यमाग्रे दक्षिणस्य तथालम्ब्य प्रयत्नतः।।
मध्यमेनाथ तर्जन्यामंगुष्ठाग्रेण योजयेत्।
दक्षिणं योजयेत्पाणिं वाममुष्टौ तु साधकः।।
दर्शयेद्दक्षिणे भागे मुण्डमुद्रेयमुच्यते।'

अर्थात् बायें हाथ के अंगूठे को मुट्ठि के अन्दर बन्द करके प्रयत्न पूर्वक उसे दाहिने हाथ की मध्यमा के अग्र भाग पर अवलम्बित कर मध्यमा और अंगूठे को तर्जनी सें जोड़ें, इस प्रकार धारित दाहिने हाथ को बायीं मुट्ठि पर स्थापित करके साधक दाहिने भाग में दर्शाये इसे शिर/मुण्ड मुद्रा नाम से कहा गया है। (पृष्ठ संख्या 60 व 61 में 5.32a, b, व c को देखें)।

5.33 शक्ति मुद्रा-

कनिष्ठिकानामिकयोः स्पृष्ट्वांगुष्ठं च न्यक्कुर्यात्।
तदुपरि शेषं धृत्वा शक्ति मुद्रा च सा स्मृता।।

अर्थात् कनिष्ठिका और अनामिका अंगुलियों को परस्पर छूवें तथा अंगूठे को अन्दर की ओर मोड़कर उस पर शेष अंगुलियों यानि तर्जनी और मध्यमा को रखें, यह शक्ति मुद्रा है। अथवा-

'मुष्टिं कृत्वा कराभ्यां च वामस्योपरि दक्षिणम्।
कृत्वा शिरसि संयोज्या शक्तिमुद्रेयमीरिता।।'

अर्थात् बायीं मुट्ठि पर दाहिनीं मुट्ठि को रख कर सिर पर स्थापित करें, इसे शक्ति मुद्रा कहा गया है। (पृष्ठ संख्या 61 में चित्र संख्या 5.33a व b को देखें।)

5.34 मुद्गर मुद्रा -

'दक्षमुष्ठिं बद्ध्वा न्यसेत्कूर्परमपरांजलौ।
मुद्गरमुद्रेयं प्रोक्ता रिपुवर्गविध्वंसिनी।।'

अर्थात् दाहिनी मुट्ठि बांधे हुये दाहिनी कुहनी को बायीं हथेली पर सीधा रखें इसे शत्रु समूह का नाशक मुद्गर मुद्रा कहा गया है। (पृष्ठ संख्या 61 में चित्र संख्या 5.34 a व b को देखें।

5.35 शत्रुजिह्वाग्र मुद्रा-

दक्षिणामूर्ति संहिता (57.33) में इस प्रकार बतायी गयी है -

'तर्जनीं बहिः सरलां।
अंगुष्ठं मुष्टिगं कुर्याद्रिपुजिह्वग्रहा भवेत्।।

अर्थात् तर्जनी को बाहर की ओर सीधा रखकर अंगूठे को मुट्ठी में बन्द रखें, यह रिपुजिह्वाग्र/शत्रुजिह्वाग्र मुद्रा होती है। (पृष्ठ संख्या 62 में चित्र संख्या 5.35 को देखें।)

5.36 षडंगमुद्रा/न्यासमुद्रा -

'हृन्नेत्रं त्रिभिराख्यातं द्वाभ्यामस्त्रशिरो मतम्।
अंगुष्ठेन शिखा ज्ञेया दिग्भिः कवचमीरितम्।।'

अर्थात् हृदय, सिर, शिखा (केवल अंगूठे से), बाहुद्वय, त्रिनेत्र और शरीर के चारों तरफ मृगीमुद्रा को दर्शाकर चुटकी बजाने का नाम षडंगमुद्रा अथवा न्यासमुद्रा है। (पृष्ठ संख्या 62 व 63 में चित्र संख्या 5.36-1, 2 3, 4, 5 व 6 को देखें)।

5.37 विसर्जन मुद्रा -

'स्वस्तिकाकारहस्ताभ्यां स्पृष्ट्वा कर्णौ तथैव च।
उन्मुक्तहस्तमूर्ध्वं कुर्यात् मुद्रा सा च विसर्जनी।'

अर्थात् हाथों को स्वस्तिक आकार में दोनों कानों के पास लेजाकर उनका स्पर्श करने के बाद पांचों अंगुलियों को फैलाये हुये अपने सिर के बराबर उठाकर रखने को विसर्जनी मुद्रा कहते हैं। (पृष्ठ संख्या 63 में चित्र संख्या 5.37 को देखें)।

5.38 सुमुखादि मुद्रा -

'सुमुखं सम्पुटं चैव विततं विस्तृतं तथा।
मुकुली च सुमुखाद्याः पंचमुद्राः प्रदर्शयेत्।'

अर्थात् सुमुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत और मुकुली नामक सुमुखादि पांच मुद्राओं के समूह को दर्शाना चाहिये। प्रत्येक के लक्षण इस प्रकार है -

5.38-1 सुमुख -

'संकुचितांगुलयश्च संश्लिष्टा करयोर्द्वयोः।'

अर्थात् दोनों हाथों की परस्पर मिली हुयी अंगुलियों को मोड़कर अग्र भागों को स्पर्श करते हुये अपने सामने धारण करें यह सुमुख मुद्रा है।

(पृष्ठ संख्या 63 में चित्रसंख्या 5.38-1 a व b को देखें।)

5.38-2 सम्पुटम् -

'तादृक्स्थितौ संयोजयेत् मणिबन्धयोश्च द्वयोः।'

अर्थात् अंगुलियों को उसी स्थिति में रखते हुये दोनों हाथों के मणिबन्धों को मिलावे यह सम्पुट मुद्रा है। (पृष्ठ संख्या 63 में चित्र संख्या 5.38-2 को देखें)।

5.38-3 विततम् -

'कृत्वाऽंगुलयश्च सर्वाः सरला अन्तरा करौ।'

अर्थात् अंगुलियों को सीधा करके दोनों हाथों की हथेलियों को परस्पर सामने थोड़ी दूर रखें यह वितत मुद्रा है। (पृष्ठ संख्या 63 में चित्र संख्या 5.38-3 को देखें)।

5.38-4 विस्तृतम् -

'अन्तरा यदा चाधिका विस्तृतं च तदोच्यते।'

अर्थात् दोनों हाथों की अंगुलियों को खोलकर दोनों को कुछ अधिक दूर यानि थोड़ा ज्यादा फैलाये, यह विस्तृत मुद्रा है। (पृष्ठ संख्या 64 में चित्र संख्या 5.38-4 को देखें)।

5.38-5 मुकुली मुद्रा -

'सम्मुखीकृत्य हस्तौ द्वौ किंचित्संकुचितांगुलीः।
मुकुली तु समाख्याता पंकजा प्रसृतैव सा।।
पूर्वोक्ता मुकुली या च प्रादेशी निःसृतांगुलीः।
व्याकोशमुद्रा मुकुला पंचमुद्राः प्रदर्शयेत्।।'

अर्थात् दोनों हाथों को सम्मुख कर अंगुलियों को थोड़ा संकुचित करें, इसे मुकुली मुद्रा कहते हैं। अंगुलियों को थोड़ा फैलाये रखने पर इसे पंकज मुद्रा कहा जाता है। जब अंगुलियों को एक प्रादेशमात्र यानि लगभग 7 से 9 इन्च फैलायें तो इसे व्याकोशा/मुकुला मुद्रा कहा जाता है। यह तीनों वैकल्पिक हैं। अतः पूर्वोक्त 4 के साथ इन तीन में से किसी एक के

सहित सुमुखादि पांच मुद्रा नाम से दर्शाने की विधि है। (पृष्ठ संख्या 64 में चित्र संख्या 5.33-5 a व b को देखें)।

5.39 योग मुद्रा -

'तर्जन्यौ कुंचिते कृत्वा तथैव च कनीयसी।
अधोमुखी दृष्टनखा स्थिता मध्ये करस्य तु।।
चतस्रश्चोत्थिताः पृष्ठे अंगुष्ठावेकतः कुरु।
नालम्ब्यावस्थितौ द्वौ तु योगमुद्रा प्रकीर्तिता।।'

अर्थात् दोनों हाथों की हथेलियों के मध्य में दोनों तर्जनियों को इस प्रकार थोड़ा संकुचित करें कि वे नीचे की ओर हों और उनके नाखून दिखाई दे। शेष चारों अंगुलियों को उनके ऊपर सीधे रखते हुये दोनों अंगूठों के अग्र भाग को स्पर्श करें। दोनों हाथ एक दूसरे पर अवलम्बित न हो, इसे योग मुद्रा कहते हैं। (पृष्ठ संख्या 64 में चित्रसंख्या 5.39 को देखें)।

5.40 ज्वालिनी मुद्रा -

'दक्षिणांगुष्ठं च मुष्टौ कृत्वा कनिष्ठिकां बहिः।
सर्वकर्मसु प्रशस्ता ख्याता मुद्रेति ज्वालिनी।।

अथवा

'उभयोर्हस्तयोः स्पृष्ट्वा चांगुष्ठकनिष्ठिकयोः।
शेषाश्च प्रसरेद्बहिः संश्लिष्टौ च करावुभौ।।
सर्वकर्मसु प्रशस्ता ख्याता मुद्रेति ज्वालिनी।।'

अर्थात् दाहिने हाथ के अंगूठे को मुट्ठि में बन्द कर कनिष्ठिका को बाहर सीधे फैलाये, इसे सकल कर्मो में अग्नि प्रज्वलन में प्रयुक्त ज्वालिनी मुद्रा कहते हैं। अथवा दोनों हाथों के अंगूठे और कनिष्ठिका के अग्रभागों को स्पर्श करके शेष अंगुलियों को बाहर की ओर थोड़ा फैलाये हुये दोनों हाथों को मणिबन्ध से जोड़ें रखें इसे सकल कर्मो में अग्नि प्रज्वलन में प्रयुक्त ज्वालिनी मुद्रा कहते हैं। (पृष्ठ संख्या 64 में चित्र संख्या 5.40 a व b को देखें)।

17. पृष्ठ संख्या 64, पंक्ति सं 08 के अन्त में इस पंक्ति को जोड़ें – पात्रासादन करें। तत्र क्रमः –

'पवित्रछेदनार्थं त्रयो दर्भाः, साग्रे अनन्तगर्भे प्रवित्रे द्वे प्रोक्षणी पात्रे, आज्यं, आज्यस्थाली, चरुस्थाली, त्रिप्रक्षालिता तण्डुला, सम्मार्जनकुशाः पंच, उपयमनकुशाः सप्त, समिधस्तिस्रः, स्रुवः, स्रुक्, पूर्णपात्रं, अन्यान्युपकल्पनीयानि अर्कादिसमित्तिलादि हवनीय द्रव्याणि निधाय पवित्रे कुर्यात्। द्वयोरुपरि त्रीणि निधाय उपरि प्रादेश मात्रं अवशेषयित्वा दक्षिणकरेण द्वयोः पवित्रयोः मूलेन द्वौ कुशौ प्रदक्षणीकृत्य वामकरेण सर्वाणि पवित्राणि युगपद्धृत्वा दक्षिणकरांगुष्ठांगुलि पर्वाभ्यां उपरि प्रादेशमात्रं छित्त्वा त्रीण्युत्तरतः क्षिपेत्, द्वे ग्राह्ये।'

अर्थात् पवित्र छेदन केलिये 3 दर्भ, साग्र अनन्तगर्भ पवित्र, दो प्रोक्षणीपात्र, घी, आज्यस्थाली, चरुस्थाली, तीन बार प्रक्षालित चावल, 5 सम्मार्जनकुशा, 7 उपयमनकुशा, 3 समिधा, स्रुवा, स्रुक्, पूर्णपात्र, अन्य उपकल्पित अर्कादि समिधा सहित तिल आदि हवनीय द्रव्य को रखकर पवित्र निर्माण करें। 2 के उपर 3 को रखकर उपरी प्रादेशमात्र को शेष करके दाहिने हाथ से 2 पवित्रों के मूल से 2 कुशाओं की प्रदक्षिणा लगाकर बायें हाथ से सभी को एक साथ धारणकर दाहिने हाथ के अंगुष्ठ व अंगुलि से उपर के प्रादेशमात्र का छेदनकर 3 को उत्तर दिशा में फेंके और 2 को ग्रहण करें। तत्पश्चात् प्रणीता आदि पात्रों को इस मन्त्र से ढ़के –

'ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेडमानो वरुणेहवोद्धयुरूशꣳसमान आयुः प्रमोषीः।'

18. पृष्ठ संख्या 91, पंक्ति संख्या 25 के बाद जोड़ें –

विशेष ज्ञातव्य– वैदिक पद्धति के अनुसार किसी भी कर्म को आरम्भ करने का क्रम यह है:-

1. सर्वप्रथम कर्मस्थान की **दिशा** व कर्मानुसार किस **दिशा** की ओर मुख करके बैठना है यह तय कर लें। इसी 'पूर्णिका' के क्रमांक 19 को पढें।

2. कर्म के अनुसार कौन सा **आसन** प्रयोग करना है व किस **आसन** में बैठना है यह तय कर लें। मूल ग्रन्थ के पृष्ठ संख्या 5 में 3.6 शीर्षक पढें व इसी 'पूर्णिका' के क्रमांक 3 को जोड़कर पढें। ।
3. कर्म के अनुसार **पत्नी को दाहिने या बायें** में बैठाना है यह तय करें। इसी 'पूर्णिका' के क्रमांक 20 को पढें।
4. तत्पश्चात् **आचमन** करना है। इसी 'पूर्णिका' के क्रमांक 29 को पढें।
5. तदनन्तर **प्राणायाम** करें। इसी 'पूर्णिका' के क्रमांक 31 को पढें।
6. पुन: पूर्ववत् **आचमन** करें।
7. **पवित्र धारण** करें। मूल ग्रन्थ के पृष्ठ संख्या 64, पंक्ति संख्या 09 तथा इसी 'पूर्णिका' के क्रमांक 21 को पढें।
8. **शरीर शुद्धि** करें। इसी 'पूर्णिका' के क्रमांक 22 को पढें।
9. **दिग्रक्षण**। मूल ग्रन्थ के पृष्ठ संख्या 116 को देखें।
10. **पृथ्वी** (भूमि) **पूजन**। मूल ग्रन्थ के पृष्ठ संख्या 115 को देखें।
11. **दीपकपूजन**। मूल ग्रन्थ के पृष्ठ संख्या 122 को देखें।
12. **शंखपूजन**। मूल ग्रन्थ के पृष्ठ संख्या 122 को देखें।
13. **घण्टीपूजन**। मूल ग्रन्थ के पृष्ठ संख्या 122 को देखें।
14. **यजमान तिलक**। इसी 'पूर्णिका' के क्रमांक 23 को पढें।
15. **शान्तिपाठ**। मूल ग्रन्थ के पृष्ठ संख्या 92 को देखें।
16. **कर्मपात्र पूजन**। इसी 'पूर्णिका' के क्रमांक 24 को पढें।
17. **सूर्यार्घ्य:**। इसी 'पूर्णिका' के क्रमांक 25 को पढें।
18. **सूर्यनमस्कार:**। इसी 'पूर्णिका' के क्रमांक 26 को पढें।
19. **प्रधान संकल्प:**-मूल ग्रन्थ के पृष्ठ संख्या 123 को देखें।

(विशेष सूचना :- यद्यपि श्रीयन्त्रपूजापद्धतिप्रकाश में इस वैदिक क्रम का अनुसरण नहीं किया गया है किन्तु आगमिक परम्परा का

अनुसरण किया गया है तथापि साधक जिस गुरु परम्परा में दीक्षित है वह उसी के अनुसार पूजा क्रम को समझकर अनुष्ठान करे।)

19. पृष्ठ संख्या 91, पंक्ति संख्या 25 के बाद पूर्वोक्त विशेष ज्ञातव्य (18/1) के अनन्तर जोड़ें - **कर्म में दिशा पर विचार** - कर्म करने के स्थान के बारे में मूल ग्रन्थ के पृष्ठ संख्या 4, 3.4 शीर्षक को देखें। उस स्थान में पूर्व, उत्तर अथवा ईशान दिशा में कर्म के योग्य स्थान का चयन करें। गोबर आदि से लीप कर पवित्र कर लें। यजमान का मुख किस ओर हो इस विषय में कर्मप्रदीप में निर्णय दिया गया है कि -

'यत्र दिङ्नियमो न स्याज्जपहोमादिकर्मसु।
तिस्रस्तत्र दिशः प्रोक्ता ऐन्द्री सौम्याऽपराजिता।।'

अर्थात् जिस जप, होम आदि कर्म में दिशा विशेष का नियम विधान नहीं किया गया है उस कर्म को करने केलिये तीन दिशाओं को श्रेष्ठ बताया है - पूर्व, उत्तर और ईशान।

20. पृष्ठ संख्या 91 में ही पूर्वोक्त विशेष ज्ञातव्य के क्रमांक 18/3 में बताये क्रम से जोड़कर पढें - **पत्नी को दाहिनी/बायीं ओर बैठाने पर विचार** - धर्मप्रवृत्ति नामक ग्रन्थ में कहा है -

'व्रतबन्धे विवाहे च चतुर्थीसहभोजने।
व्रते दाने मखे श्राद्धे पत्नी तिष्ठति दक्षिणे।।
सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतः शुभा।
अभिषेके विप्रपादक्षालने चैव वामतः।।'

अर्थात् व्रतबन्ध, विवाह, चतुर्थी संस्कार, सह भोजन, व्रत, दान, याग व हवन और श्राद्ध - इन कर्मों में पत्नी दाहिनी तरफ बैठेगी। सामान्यतः सभी धर्म कार्यों में पत्नी का दाहिने बैठना ही शुभ है किन्तु अभिषेक कर्म और ब्राह्मण आदि श्रेष्ठ व ज्येष्ठ के पाद प्रक्षालन कर्म में बाये बैठना चाहिये। कात्यायन 4.7.19 में कहते हैं -

'जातके नामके चैव ह्यन्नप्राशनकर्मणि।
तथा निष्क्रमणे चैव पत्नी पुत्रश्च दक्षिणे।।

गर्भाधाने पुंसवने सीमन्तोन्नयने तथा।
वधूप्रवेशने चैव पुनः सन्धान एव च।।
प्रदाने मधुपर्कस्य कन्यादाने तथैव च।
कर्मस्वेतेषु भार्या वै दक्षिणे तूपवेशयेत्।।'

अर्थात् जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन और निष्क्रमण कर्म में पत्नी एवं पुत्र दाहिनी तरफ बैठें। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, वधूप्रवेश, द्विरागमन, मधुपर्क दान और कन्या दान इन कर्मो में पत्नी दाहिनी तरफ बैठें। किन्तु संस्कारगणपति में कहा गया है –

'वामे सिन्दूरदाने च वामे चैव द्विरागमे।
वामेऽशनैकशय्यायां भवेज्जाया प्रियार्थिनी।।
वामे पत्नी त्रिषु स्थाने पितृणां पादशौचने।
रथारोहणकाले च ऋतुकाले सदा भवेत्।।
विप्रक्षत्रियविट्छूद्रैः स्त्रीरहितैः क्रमाद्धार्या।
कुशहेमरौप्यरचिता ताम्रा च धर्माय धार्या ।।'

अर्थात् सिन्दूर दान, द्विरागमन, भोजन, एक शय्या पर शयन, पितरों के पाद प्रक्षालन, रथारोहण और ऋतुकाल में प्रियार्थी पत्नी पति के बाये भाग में होनी चाहिये। जिसके पत्नी नहीं है (अर्थात् मृत, त्यक्त, रजस्वला, रुग्ण और अन्य किसी कारण से कर्म करने में असमर्थ हो तो) ब्राह्मण हो तो कुशा की, क्षत्रिय हो तो सोने की, वैश्य हो तो चांदी की और शूद्र हो तो तांबे की अपनी पत्नी के सदृश मूर्ति बनवाकर धार्मिक कर्म केलिये प्रयोग कर सकते हैं।

21. पृष्ठ संख्या 91 में ही पूर्वोक्त विशेष ज्ञातव्य के क्रमांक 18/7 में बताये अनुसार पृष्ठ संख्या 64, पंक्ति संख्या 15 से जोड़कर पढ़ें –

पवित्रधारण विधिः–

'ॐ पवित्रेस्थो वैष्णव्यो सवितुर्वः प्रसव।
उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।1।
तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुनेतच्छकेयम्।।2।।

22. पृष्ठ संख्या 91 में ही पूर्वोक्त विशेष ज्ञातव्य के क्रमांक 18/8 में बताये क्रम से जोड़कर पढें – **शरीरशुद्धिः –**

'अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थांगतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।
पुण्डरीकाक्षः पुनातु, पुण्डरीकाक्षः पुनातु, पुण्डरीकाक्षः पुनातु।

23. पृष्ठ संख्या 91 में ही पूर्वोक्त विशेष ज्ञातव्य के क्रमांक 18/14 में बताये क्रम से जोड़कर पढें – **यजमानतिलकविधिः –**

'ॐ न तद्रक्षाꣳसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजꣳह्येतत्। यो बिभर्ति दाक्षायणꣳ हिरण्यꣳ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः।।1।।
ॐ यदा बध्नं दाक्षायणा हिरण्यꣳ शतानीकाय सुमनस्यमानाः। तन्म आबध्नामि शतशारदायायुष्मञ्जरदष्टिर्यथासम्।।2।।
येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षे माचल माचल।।3।।'

24. पृष्ठ संख्या 91 में ही पूर्वोक्त विशेष ज्ञातव्य के क्रमांक 18/16 में बताये क्रम से जोड़कर पढें – **कर्मपात्रपूजनं** – कर्मपात्र की आधारभूत भूमि पर षट्कोण बनाकर स्पर्श करते हुये इस मन्त्र का पाठ करें–

ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधा या विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री। पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः।।'

अगले मन्त्र का पाठ करते हुये थोड़े धान्य को उस पर ड़ालें–

'ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान्प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा दीर्घामनुप्रसितिमायुषेधान् देवो वः सविता हिरण्यपाणिः। प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषेत्वा महीनाम्पयोसि।।'

उस पर कर्मपात्र को स्थापित करें–

'ॐ आजिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विद वः पुनरूर्ज्जानि वर्तस्वसानः। सहस्रं धुक्ष्वोरु धारापयस्वतीः पुनर्मा विशताद्रयिः।।'

अब कर्मपात्र को जल से भरें–

'ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भ सर्जनीस्थो वरुणस्यऽ ऋतसदन्यसि वरुणस्यऽऋतसदनमसि वरुणस्यऽऋत सदनमासीद ।'

तत्पश्चात् उसमें गन्ध को समर्पित करें–

'ॐ त्वां गन्धर्वाऽअखनस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः।
त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत।।'

उसमें अक्षत डालें –

'अक्षन्नमीमदन्त ह्यवप्रियाऽअधूषत।
अस्तोषतस्व भानवो विप्रानविष्ठयामती यो जान्विन्द्र ते हरी।।

उसमें पुष्प को डालें–

'ॐ याऽओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगम्पुरा।
मनैनुवभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च।'

तदनन्तर दूर्वा डालें–

'ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि।
एवानो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च।।'

कर्मपात्र के अन्दर डाली गयी सामग्री को पुष्प से अच्छी तरह से घुमायें और कर्मपात्र के गले में मौली को बांधें –

'ॐ सुजातो ज्येतिषा सह शर्म वरूथमासदत्स्वः।
वासोऽअग्ने विश्वरूपं संव्ययस्व विभावसो।।'

पुष्पाक्षतों से तीर्थो का आवाहन करें –

'काशी कुशस्थली मायाऽवन्त्ययोध्या मधोपुरी।
शालिग्राम सगोकर्ण नर्मदा च सरस्वती।।
गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु।।
ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करे स्पृष्टानि ते रवे।
तेन सत्येन देवेश तीर्थं देहि दिवाकर।।
पुष्कराद्यानि तीर्थानि गंगाद्यास्सरितस्तथा।

आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारकाः।।
नन्दिनी नलिनी सीता मालती च महापगा।
विष्णुपादाब्जसम्भूता गंगा त्रिपथगामिनी।।
ॐ पंचनद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः।
सरस्वती तु पंचधा सो देशेऽभवत्सरित्।।'

इस प्रकार तीर्थों का आवाहन करके पवित्री से जल का आलोडन करें –

'ॐ यद्देवा देव हेडनं देवा सश्च कृमावयम्।
अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः।।
ॐ यदि दिवा यदि नक्तमेनाꣳसि च कृमावयम्।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः।।
यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनाꣳसि च कृमावयम्।
सूर्योमा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः।।'

हाथ जोड़कर प्रार्थना करें –

'नमामि गंगे तव पादपंकजं सुरासुरैर्वन्दितदिव्यरूपम्।
भुक्तिं च मुक्तिं च ददासि नित्यं भावानुसारेण सदा नराणाम्।।
अहिरिपुपतिकान्ता तातसंबद्धकान्ता,
हरतनयनिहन्ता प्राणदाता ध्वजस्य।
सखिसुतसुतकान्ता तातसंपूज्यकान्ता,
पितुः शिरसि वहन्ती जाह्नवी नः पुनातु।।'

तत्पश्चात् कर्मपात्रस्थ पुष्प से सभी पर और समस्त सामग्री पर प्रोक्षण करें – **'अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थांगतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।'**

25. पृष्ठ संख्या 91 में ही पूर्वोक्त विशेष सूचना के क्रमांक 18/17 में बताये क्रम से जोड़कर पढें – **सूर्यार्घ्यः** – जलाक्षतरक्तचन्दनरक्तपुष्प को अर्घ्यपात्र में रखकर सूर्य को अर्घ्य दें–

'एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशेः जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर।।'

26. पृष्ठ संख्या 91 में ही पूर्वोक्त विशेष ज्ञातव्य के क्रमांक 18/18 में बताये गये क्रम से जोडकर पढें – **सूर्यनमस्कारः** –

'ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ति,
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।
केयूरवान्मकरकुण्डलवान् किरीटी,
हारी हिरण्मयवपुः धृतशंखचक्रः।।
नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे।
जगत्सवित्रे शुचये नमस्ते कर्मदायिने।।
आदित्याय नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने।
जन्मान्तरसहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते।।'

27. पृष्ठ संख्या 95, पंक्ति संख्या 09 से पृष्ठ संख्या 96, पंक्ति संख्या 20 तक संकेतित किये गये अंश को पूरा करके इस प्रकार पढ़ें–

ॐ मोदाय नमः, मोदमावाहयामि।
ॐ प्रमोदाय नमः, प्रमोदमावाहयामि।
ॐ सुमुखाय नमः, सुमुखमावाहयामि।
ॐ दुर्मुखाय नमः, दुर्मुखमावाहयामि।
ॐ अविघ्नाय नमः, अविघ्नमावाहयामि।
ॐ विघ्नकर्त्रे नमः, विघ्नकर्तारमावाहयामि। इत्यावाह्य – **'मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञठं समिमं दधातु।। विश्वेदेवासऽइह मादयन्तामों३प्रतिष्ठ।।'** इति प्रतिष्ठाप्य **'ऊँ मोदादिषड् विनायकेभ्यो नमः'** इति नाममन्त्रेण षोडशोपचारैः संपूजयेत्। **'अनया पूजया मोदादिषड्विनायकाः प्रीयन्ताम्, न मम।'**

ततो **गौर्यादि षोडश मातृका पूजनम्** अक्षतपुंजेषु पूगीफलेषु वा निवेश्याः। तत्रायं क्रमः–

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः।।1।।

हृष्टिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मनः कुलदेवताः।।
गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्याश्च षोडश।।2।।

ॐ गणेशाय नमः। गणेशमावाहयामि।।1।।
ॐ गौर्यै नमः। गौरीमावाहयामि।।2।।
ॐ पद्मायै नमः। पद्मामावाहयामि।।3।।
ॐ शच्यै नमः। शचीमावाहयामि।।4।।
ॐ मेधायै नमः। मेधामावाहयामि। 5।।
ॐ सावित्र्यै नमः। सावित्रीमावाहयामि।।6।।
ॐ विजयायै नमः। विजयामावाहयामि ।। 7।।
ॐ जयायै नमः। जयामावाहयामि।।8।।
ॐ देवसेनायै नमः। देवसेनामावाहयामि।।9।।
ॐ स्वधायै नमः। स्वधामावाहयामि।।10।।
ॐ स्वाहायै नमः। स्वाहामावाहयामि ।।11।।
ॐ मातृभ्यो नमः। मातृरावाहयामि।। 12।।
ॐ लोकमातृभ्यो नमः। लोकमातृरावाहयामि।। 13।।
ॐ हृष्ट्यै नमः। हृष्टिमावाहयामि।। 14।।
ॐ पुष्ट्यै नमः। पुष्टिमावाहयामि।। 15।।
ॐ तुष्ट्यै नमः । तुष्टिमावाहयामि।।16।।
ॐ आत्मनः कुलदेवतायै नमः। कुलदेवतामावाहयामि।। 16।।

इत्यावाह्य **'ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु।। विश्वेदेवासऽइह मादयन्तामोंꣳ प्रतिष्ठ।।'** इति प्रतिष्ठाप्य **'ॐ गौर्य्यादिषोडशमातृकाभ्यो नमः'** नाममन्त्रेण षोडशोपचारैः संपूजयेत्। ततः कुड्ये पीठे वा आवाहित घृतमातृणामुपरि घृतेन कुंकमाक्तेन दक्षिणोत्तराः सप्त धारा दद्यात्।

'ॐ वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारं देवस्य त्वा सविता पुनातु।। वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वाकामधुक्षः ।।1।।'

अथ सप्तघृतमातृका पूजनम्–

ॐ श्रीश्चलक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा सरस्वती।
मांगल्येषु प्रपूज्यन्ते सप्तैता घृतमातरः।।1।।

ॐ श्रियै नमः। श्रियमावाहयामि।।1।।
ॐ लक्ष्म्यै नमः। लक्ष्मीमावाहयामि।। 2।।
ॐ धृत्यै नमः। धृतिमावाहयामि।।3।।
ॐ मेधायै नमः। मेधामावाहयामि।। 4।।
ॐ पुष्ट्यै नमः। पुष्टिमावाहयामि ।। 5।।
ॐ श्रद्धायै नमः। श्रद्धामावाहयामि।। 6।।
ॐ सरस्वत्यै नमः। सरस्वतीमावाहयामि।।7।।

इत्यावाह्य '**ॐ घृतमातृकाभ्यो नमः**' इति षोडशोपचारैः पूजयेत्।

अथ सप्त स्थलमातरः:– तण्डुलपुंजेषु–

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्त मातरः।।

ॐ ब्राह्मयै नमः। ब्राह्मीमावाहयामि।1।
ॐ माहेश्वर्यै नमः। माहेश्वरीमावाहयामि।।2।
ॐ कौमार्यै नमः। कौमारीमावाहयामि। 3।
ॐ वैष्णव्यै नमः। वैष्णवीमावाहयामि । 4।
ॐ वाराह्यै नमः। वाराहीमावाहयामि ।5।
ॐ इन्द्राण्यै नमः। इन्द्राणीमावाहयामि । 6।।

इत्यावाह्य 'ॐ स्थलमातृकाभ्यो नमः' इति षोड़शोपचारै पूजयेत्।

28. पृष्ठ संख्या 104, पंक्ति संख्या 13 में जोड़ें –

ॐ के उच्चारण पर विचार –

ॐ के **उच्चारण** के विषय में **छन्दोगपरिशिष्ट** में कहा गया है – **'ॐकारपूर्वं हि योगोपासनं यानि नित्यानि पुण्यतमानि कर्माणि दानयज्ञतपःस्वाध्यायजपध्यानसन्ध्योपासनप्राणायामहोमदैव**

पैत्र्यमन्त्रोच्चारब्रह्मारम्भदीनि यच्चान्यत्किंचिच्छ्रेयस्तत्सर्व प्रणव मुच्चार्य प्रवर्तयेत्समापयेच्च। स्वरितोदात्त एकाक्षर ॐकारो ऋग्वेदे। सर्वोदात्त एकाक्षर ॐकारो यजुर्वेदे। दीर्घोदात्त एकाक्षर ॐकारः साम्नि। संक्षिप्तोदात्त एकाक्षर ॐकारोऽथर्वणवेदे।।'
अर्थात् जिसलिये ॐकार पूर्वक योगसाधना, समस्त नित्य पुण्यकर्म, दान, यज्ञ, तप, स्वाध्याय, जप, ध्यान, सन्ध्योपासना, प्राणायाम, होम, देवता पूजन, पितृकर्म, किसी भी मन्त्र का उच्चारण, वेदपाठ का आरम्भ आदि शुभ कर्मो को तथा अन्य जो कुछ भी कल्याणकारी कर्म किये जाने पर शुभ हो जाते हैं, इसलिये उन सब को ॐ के उच्चारण से आरम्भ कर ॐ के उच्चारण से ही समाप्त करें। किन्तु स्वर का ध्यान रखना है क्योंकि ऋग्वेदीय ॐ स्वरितोदात्त है, यजुर्वेदीय ॐ सर्वोदात्त है, सामवेदीय ॐ दीर्घोदात्त और अथर्ववेदीय ॐ ह्रस्वोदात्त है। बौधायन ने कहा है – **'अपि वा प्रणवमेव त्रिरन्तर्जले पठन्सर्वपापात्प्रमुच्यते सर्वपापात्पूतो भवति।'** अर्थात् स्नानार्थ जल में डुबकी लगाये हुये तीन बार ॐ का उच्चारण करे तो वह सब पापों से मुक्त होकर अत्यन्त पवित्र हो जाता है। तथा योगीयाज्ञवल्क्य ने कहा है –

'माङ्गल्यं पावनं धर्म्यं सर्वकामप्रसाधनम्।
ॐकारं परमं ब्रह्म सर्वमन्त्रेषु नायकम्।।
आद्यं मन्त्राक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन् प्रतिष्ठिता।
सर्वमन्त्रप्रयोगेषु ओमित्यादौ प्रयुज्यते।।
तेन संपरिपूर्णानि यथोक्तानि भवन्ति हि।
सर्वमन्त्राधियज्ञेन ॐकारेण न संशयः।।'

अर्थात् ॐकार मंगलमय, पावन, धर्मस्वरूप, सर्वकाम प्रदायक, परम ब्रह्म, सभी मन्त्रों का नायक और आद्य मन्त्राक्षर है जिसमें तीनों वेद प्रतिष्ठित हैं , इसलिये सभी मन्त्रों के प्रयोग के शुरु में ॐका प्रयोग होता है। उन सभी मन्त्रों के अधियज्ञरूप ॐकार से ही यथोक्त सभी मन्त्र पूर्णता को प्राप्त होते हैं।

29. पृष्ठ संख्या 104, पंक्ति संख्या 13 में जोड़ें -

आचमन पर विचार -विश्वामित्रकल्प में कहा गया है -

'शुद्धं स्मार्तं तथा चैव पौराणं वैदिकं तथा।
तान्त्रिकं श्रौतस्मार्तं च षड्विधं श्रुतिनोदितम्।।'

अर्थात् श्रुति यानि वेदों में कहे गये आचमन छः प्रकार के हैं - शुद्ध, स्मार्त, पौराणिक, वैदिक, तान्त्रिक और श्रौतस्मार्त।

'विण्मूत्रादिकशौचेषु शुद्धं च परिकीर्तितम्।
स्मार्तं पौराणिकं कर्मण्याचमेद्विधिपूर्वकम्।।
वैदिकं श्रौतस्मार्तं च ब्रह्मयज्ञादिपूर्वकम्।
अस्त्रविद्यादिकार्याणां तान्त्रिको विधिरुच्यते।।'

अर्थात् मल-मूत्र त्याग आदि कर्म में शुद्ध आचमन, सामान्य पुण्य कर्म में स्मार्त व पौराणिक आचमन, स्वाध्याय आदि वैदिक कर्म में वैदिक व श्रौतस्मार्त आचमन और अस्त्रविद्या आदि कर्म में तान्त्रिक आचमन का प्रयोग करें, ।

1. श्रौत (वैदिक) आचमन क्या है, आह्निककारिका में कहा है -

'प्रणवं पूर्वमुच्चार्य सावित्रीं तदनन्तरम्।
तथैव व्याहृतीस्तिस्रः श्रौताचमनमुच्यते।।'

अर्थात् पहले ॐ का उच्चारण करके व्याहृतियों को व्यस्त व समस्त रूप से क्रमशः उच्चारण कर गायत्री मन्त्र का उच्चारण करना श्रौत आचमन है। जैसे कि -

'ॐ भूः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा, ॐ भुवः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा, ॐ स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा, (हस्तप्रक्षालन करें -) **ॐ भूर्भुवःस्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा।**

2. स्मार्त आचमन क्या है, भरद्वाजस्मृति में कहा है -

'केशवाद्यैस्त्रिभिः पीत्वा द्वाभ्यां प्रक्षालयेत्करौ।

द्वाभ्यामोष्ठौ तु संमृज्य द्वाभ्यामुन्मार्जनं तथा।।
एकेन हस्तौ प्रक्षाल्य पादावपि तथैव च।
सम्प्रोक्ष्यैकेन मूर्धानं ततः संकर्षणादिभिः।।
आस्यनासाक्षिकर्णौ च नाभ्युरस्कं भुजौ क्रमात्।
एवमाचमनं कृत्वा साक्षान्नारायणो भवेत्।।'

अर्थात् **ॐ केशवाय नमः स्वाहा, ॐ नारायणाय नमः स्वाहा, ॐ माधवाय नमः स्वाहा** - तीन बार पीयें, **ॐ गोविन्दाय नमः** - दाहिना हाथ धोवें, **ॐ विष्णवे नमः** - बायां हाथ धोवें, **ॐ मधुसूदनाय नमः** - ऊपर के ओंठ पर प्रोक्षण करें, **ॐ त्रिविक्रमाय नमः** - निचले ओंठ पर प्रोक्षण करें, **ॐ वामनाय नमः** और **ॐ श्रीधराय नमः** - उन्मार्जन करें, **ॐ हृषीकेशाय नमः** - दोनों हाथ धोवें, **ॐ पद्मनाभाय नमः** - दोनों पैर धोवें, **ॐ दामोदराय नमः** - सिर पर प्रोक्षण करें, **ॐ संकर्षणाय नमः** - मुख प्रक्षालन करें, **ॐ वासुदेवाय नमः** - दक्षिण नासा पुट का स्पर्श करें, **ॐ प्रद्युम्नाय नमः** - बायें नासापुट का स्पर्श करें, **ॐ अनिरुद्धाय नमः** - दाहिनी आंख का स्पर्श करें, **ॐ पुरुषोत्तमाय नमः** - बायीं आंख का स्पर्श करें, **ॐ अधोक्षजाय नमः** - दाहिने कान का स्पर्श करें, **ॐ नारसिंहाय नमः** - बायें कान का स्पर्श करें, **ॐ अच्युताय नमः** - नाभि का स्पर्श करें, **ॐ जनार्दनाय नमः** - हृदय का स्पर्श करें, **ॐ उपेन्द्राय नमः** - मस्तक का स्पर्श करें, **ॐ हरये नमः** - दाहिनी बाहु का स्पर्श करें, **ॐ श्री कृष्णाय नमः** - बायीं बाहु का स्पर्श करें, **ॐ नमो भगवते वासुदेवाय** - शरीर के चारों तरफ प्रदक्षिणा के क्रम से जल छिड़कें।

3. तान्त्रिक (आगमिक) आचमन क्या है, देवीरहस्य में कहा है -
'ॐ आत्मतत्त्वं शोधयामि स्वाहा। ॐ विद्यातत्त्वं शोधयामि स्वाहा। ॐ शिवतत्त्वं शोधयामि स्वाहा। (तीन बार पीयें)(हस्तप्रक्षालन करें) **ॐ सर्वतत्त्वं शोधयामि स्वाहा।'**

4. पौराणिक आचमन -

'केशवादिभिः नामभिः कुर्यादाचमनं चैव।

तच्च पौराणिकं स्मृतं।

अर्थात् **ॐ केशवाय नमः स्वाहा, ॐ नारायणाय नमः स्वाहा, ॐ माधवाय नमः स्वाहा** – तीन बार पीयें, **ॐ ऋषीकेशाय नमः** – हस्तप्रक्षालन करें।

5. शुद्ध आचमन – **ॐ ऋग्वेदाय नमः स्वाहा, ॐ यजुर्वेदाय नमः स्वाहा, ॐ सामवेदाय नमः स्वाहा** – तीन बार पीयें, **ॐ अथर्ववेदाय नमः** – हस्तप्रक्षालन करें। (इसका प्रमाण हमें प्राप्त नहीं हुआ है, किन्तु अत्यन्त प्रचलित है, अतः हमने इसका संकलन यहां किया है)।

किन्तु वृद्धपाराशर में 3 प्रकार का ही आचमन कहा गया है –

'त्रिधा आचमनं प्रोक्तं श्रौतस्मार्तपुराणतः।'

अर्थात् तीन प्रकार का आचमन कहा गया है – श्रौत, स्मार्त और पौराणिक।

आचमन कब – कब करें :– वृद्धपाराशर में कहा है –

'ब्रह्मयज्ञादिके कुर्याच्छ्रुतेराचमनं द्विजः।।
सन्ध्यायां कर्मकाले च स्मृतेराचमनं स्मृतम्।
शौचाचारे चान्यं याने स्पृष्टास्पृष्टे च चर्वणे।।'

अर्थात् वेदों के अध्ययन आदि श्रौत शुभकर्म में श्रौत आचमन, सन्ध्यावन्दन आदि स्मार्त शुभकर्म में स्मार्त आचमन और शौच आचरण, छूवाछूत, यात्रा, भोजन आदि व्यावहारिक कर्म में पौराणिक आचमन करना चाहिये। देवलस्मृति में कहा है –

'रेतोमूत्रशकृन्मोक्षे भोजने च परिक्षये।
उच्छिष्टं मानवं स्पृष्ट्वा भोज्यं चापि तथाविधम्।।'

अर्थात् स्वप्नदोष होने पर तथा मल व मूत्र त्याग करने पर, भोजन की समाप्ति होने पर, अछूत मनुष्य व झूठे अन्नादि का स्पर्श करने पर आचमन करना चाहिये। बार्हस्पतस्मृति में कहा है –

'अधोवायुसमुत्सर्गे आक्रन्दे क्रोधसम्भवे।
मार्जारमूशकस्पर्शे प्रहासेऽनृतभाषणे।।

निमित्तेष्वेषु धर्मार्थं कर्मकुर्वन्नुपस्पृशेत्।'

अर्थात् धार्मिक कर्म करते वक्त इन निमित्तों की उपस्थिति में यानि अपान वायु का त्याग करने पर, रोने पर, क्रोध करने पर, बिल्ली व चूहे को स्पर्श करने पर, फालतु हँसने और झूठ बोलने पर आचमन अवश्य करना चाहिये अपनी शुद्धि केलिये। आपस्तम्ब ने कहा है – **'मूत्रपुरीशान्न लेपान्नशेषलेपा रेतसश्च यो लेपस्तान्प्रक्षाल्य पादौ चाचम्य प्रयतो भवेत्।।'** अर्थात् मूत्र, मल, अन्न, अन्नशेष, वीर्यादि के शरीर पर लगने से उसे धोकर तथा पैर को धोके आचमन करने से ही व्यक्ति शुद्ध होता है।

आचमन कैसे करें –

आचमन दो प्रकार से करने की प्रामाणिक परम्परा है।

1. **'दक्षिणेनोदकं पेयं दक्षं वामेन संस्पृशेत्।
तावन्न शुद्ध्यते वारि यावद्वामो न युज्यते।।
गोकर्णाकृतिहस्तेन माषमात्रं जलं पिबेत्।
आचमनं च तत्प्रोक्तं सर्वकर्मसु पावनम्।।'**

अर्थात् बायें हाथ से दाहिने हाथ (हाथ की कोहनी, करपृष्ठ, आदि किसी भी शुद्ध भाग) का स्पर्श किये हुये ही जल ग्रहण करें, क्योंकि तब तक जल शुद्ध नहीं होता जब तक बायें हाथ से दाहिने हाथ का स्पर्श नहीं होता। एक माष (यानि उड़द के एक दाने) के वजन बराबर वजन जल को गौ के कान के आकार में धारित अंजलि में डालकर कायतीर्थ से मन्त्र पूर्वक ही आचमन करना चाहिये। अथवा

2. **'संहृतांगुलिना तोयं गृहीत्वा पाणिना द्विजः।
मुक्तांगुष्ठकनिष्ठेन शेषेणाचमनं चरेत्।।'**

अर्थात् अंगूठा और कनिष्ठिका को सीधे रखते हुये शेष अंगुलियों को थोड़ा अन्दर की ओर मोड़ कर उसमें जल को ग्रहण कर आचमन करें। स्त्रियां आचमन कैसे करें –

'आचमनस्थाने उदकेन नेत्रस्पर्शमाचरेत्।'

अर्थात् स्त्रियों को यदि आचमन करने का प्रसंग आये तो वे जल न पियें किन्तु जल से नेत्रों का स्पर्श मात्र करें।

30. पृष्ठ संख्या 109, पंक्ति संख्या 02 में जोड़ें -

ऋषिछन्दादि पर विचार :- व्यासस्मृति में कहा है -

'अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च।
योऽध्यापयेद्याजयेद्वा पापीयान् जायते तु सः।।'

अर्थात् ऋषि, छन्द, देवता और विनियोग न जानते हुये जो पढ़ता व पढ़ाता, याग करता व कराता है वह अत्यन्त पापी अवश्य हो जायेगा। योगीयाज्ञवल्क्य ने मन्त्र के ऋषि के निर्णय के बारे में कहा है -

'येन यो ऋषिणा दृष्टो मन्त्रः सिद्धिश्च तेन वै।
मन्त्रेण तस्य स प्रोक्त ऋषिभावस्तदात्मकः।।'

अर्थात् जो मन्त्र जिस ऋषि के द्वारा देखा गया यानि ध्यान काल में भगवत्कृपा से हृदय में अनुभव किया गया व उस मन्त्र का प्रयोग कर सिद्ध कर लिया गया हो उस ऋषि को ही उस मन्त्र के ऋषि के रूप में भावना करनी चाहिये। तथा अन्य ग्रन्थ में मन्त्र के छन्द के बारे में कहा है -

'छादनाच्छन्द उद्दिष्टं वाससी वाऽथवा कृते।
आत्मा तु छादितो देवि मृत्योर्भीतैस्तु वै पुरा।।
आदित्यैर्वसुभी रुद्रैस्तेन छन्द इति स्मृतम्।।'

अर्थात् कपड़े से ढकने पर अथवा आच्छादन करने से छन्द कहा गया है। अथवा मृत्यु के भय से आदित्य, वसु और रुद्र आदि देवताओं के द्वारा जिसके शरण होने पर आत्मा ढ़का गया यानि उस मन्त्र के स्वरूप की रक्षा हुयी उसे छन्द कहते हैं। तथा मन्त्र के देवता के बारे में कहा गया है-

'यस्य यस्य च मन्त्रस्य प्रोद्दिष्टा या च देवता।
तदाकारं भवेत्तस्य दैवतं देवतोच्यते।।'

अर्थात् जिस जिस मन्त्र का उद्देश्य यानि लक्ष्य जो देवता है उस उस मन्त्र को उस देवता के रूप से भावना करना ही उस मन्त्र का देवता कहा गया है। तथा मन्त्र के विनियोग के बारे में कहा गया है -

'पुरा कल्पे समुत्पन्ना मन्त्राः कर्मार्थमेव च।
अनेनेदं तु कर्तव्यं विनियोगः स उच्यते।।
निरुक्तं तु यस्य मन्त्रस्य समुत्पत्तिः प्रयोजनम्।

प्रतिष्ठानं स्तुतिश्चैव ब्राह्मणं चाभिधीयते।।
एवं पंचविधं योगं जपकाले त्वनुस्मरेत्।
होमे वान्तर्जले योगे स्वाध्याये याजने तथा।।'

अर्थात् 'इस मन्त्र से यह कर्म करें' - इस प्रकार प्राचीन काल में कल्प सूत्रकारों ने अध्ययन द्वारा प्राप्त मन्त्रों का जिस कर्म में प्रयोग करना निश्चय किया है उसे विनियोग कहते हैं। वह पांच प्रकार का है - समुत्पत्ति, प्रयोजन, प्रतिष्ठान, स्तुति और ब्राह्मण यानि व्याख्यान। इनको जानकर जप, होम, यजन-याजन, स्वाध्याय, योगसाधना और स्नानार्थ जल में डुबकी लगाते वक्त स्मरण करना चाहिये।

31. पृष्ठ संख्या 109, पंक्ति संख्या 08 में जोड़ें -

प्राणायाम पर विचार - देवीभागवत में कहा है -

'इडयाकर्षयेद्वायुं बाह्यं षोडशमात्रया।
धारयेत्पूरितं योगी चतुःषष्ट्या तु मात्रया।।
सुषुम्नामध्यगं सम्यग्द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः।
नाड्या पिंगलया चैव रेचयेद्योगवित्तमः।।

अर्थात् दाहिनी नासिका बन्द कर बायीं नासिका से पूरक (16 मात्रा) - '**ॐ भूः ॐ भुवः** इत्यादि 7 व्याहृति युक्त गायत्री **ॐ विष्णवे नमः**', दोनों नासिका बन्द कर कुम्भक (64 मात्रा) - '**ॐ भूः ॐ भुवः** इत्यादि 7 व्याहृति युक्त गायत्री **ॐ ब्रह्मणे नमः**', बायीं नासिका बन्दकर दाहिनी नासिका से रेचक (32 मात्रा) - '**ॐ भूः ॐ भुवः** 'इत्यादि 7 व्याहृति युक्त गायत्री **ॐ महेश्वराय नमः**', पुनः दोनों नासिका बन्दकर कुम्भक (16 मात्रा) - '**ॐ भूः ॐ भुवः** इत्यादि 7 व्याहृति युक्त गायत्री **ॐ हिरण्यगर्भाय नमः**'। अन्यत्र भी कहा है -

'दक्षेन रेचयेद्वायुं वामेनापूरितोदरम्।
कुम्भकेन जपं कुर्यात्प्राणयामो भवेदिति।।'

अर्थात् दाहिनी नासिका से श्वास छोड़कर (रेचक) बायीं नासिका से श्वास लें (पूरक - पेट भरना) और श्वास को अन्दर रोके (कुम्भक) हुये जप करें यही प्राणायाम है।

32. पृष्ठ संख्या 109, पंक्ति संख्या 08 में जोड़ें -

गायत्रीमन्त्र के वर्णों के देवता - योगीयाज्ञवल्क्य ने बताया है कि -

'अक्षराणां तु दैवत्यं सम्प्रवक्ष्याम्यतः परम्।
आग्नेयं (तत्) **प्रथमं ज्ञेयं वायव्यं च** (स) **द्वितीयकम्।।**
तृतीयं (वि) **सूर्यदैवत्यं चतुर्थं** (तुर्) **वैद्युतं तथा।**
पंचमं (व) **यमदैवत्यं वारुणं** (रे) **षष्ठमुच्यते।।**
बार्हस्पत्यं सप्तमं तु (णि) **पार्जन्यमष्टमं** (यम्) **विदुः।**
ऐन्द्रं तु नवमं (भर्) **ज्ञेयं गान्धर्वं दशमं** (गो) **तथा।।**
पौष्णमेकादशं (दे) **प्रोक्तं मैत्रावरुणं द्वादशम्** (व)।
त्वाष्ट्रं त्रयोदशं (स्य) **ज्ञेयं वासवं तु चतुर्दशम्** (धी)।।
मारुतं पंचदशकं (म) **सौम्यं षोडशकं** (हि) **स्मृतम्।**
सप्तदशं (धि) **त्वांगिरसं वैश्वदेवमतः परम्** (यो)।।
आश्विनं चैकोनविंशं (यो) **प्राजापत्यं तु विंशकम्** (नः)।
सर्वदेवमयं प्रोक्तमेकविंशमतः परम् (प्र)।।
रौद्रं द्वाविंशकं (चो) **प्रोक्तं त्रयोविंशं** (द) **तु ब्राह्मकम्।**
वैष्णवं तु चतुर्विंश (यात्) **मेता ह्यक्षरदेवताः।।'**

अर्थात् गायत्री मन्त्र के प्रत्येक अक्षर के देवता बताऊँगा - 1. तत् - अग्नि, 2. स - वायु, 3. वि - सूर्य, 4. तुर् - विद्युत, 5. व - यम, 6. र - वरुण, 7. णि - बृहस्पति 8. यम् - पर्जन्य, 9. भर् - इन्द्र, 10. गो - गन्धर्व, 11. दे - पूषा, 12. व- मैत्रावरुण, 13. स्य - त्वष्टा, 14. धी - वसु, 15. म - मरुत 16. हि - सोम, 17. धि - आंगिरस, 18. यो - विश्वदेव, 19 यो - अश्विन, 20. नः - प्रजापति, 21. प्र - सर्व देवमय, 22. चो - रुद्र, 23. द - ब्रह्मा, 24. यात् - विष्णु।

'जपकाले तु संस्मृत्य तासां सायुज्यतां व्रजेत्।
गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी।।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिवि चेह च पावनम्।
हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे।।
तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणोऽनुदये शुचिः।
तस्मिन्न लिप्यते पापमब्बिन्दुरिव पुष्करे।।'

अर्थात् जप काल में इन देवताओं का स्मरण करें तो जापक इन देवताओं का साथी हो जायेगा। क्योंकि गायत्री वेदजननी है और पापनाशिनी है। इस लोक और पर लोक में गायत्री से बढ़कर कोई पवित्रकारक मन्त्र नहीं है। नरक में गिरते हुये की अपने हाथ से रक्षा करनेवाली देवी है गायत्री। इसलिये नित्य ही सूर्योदय से पूर्व शुद्ध होकर सभी को (विशेषत: ब्राह्मण को) गायत्री मन्त्र का जप अवश्य करना चाहिये। उससे दिनभर जाने-अनजाने में होने वाले पापों का स्पर्श भी नहीं होता उसी प्रकार जिस प्रकार तालाब में कमल से जल की बूंद का स्पर्श नहीं होता।

33. पृष्ठ संख्या 126-186 में मुद्रित न्यास प्रकरण में प्रयुक्त कुछ चक्रों के स्थान तथा अंग आदि वाचक जिन संस्कृतशब्दों के हिन्दी में अर्थ कुछ पाठकों द्वारा पूछे गये है, वे इस प्रकार हैं -

चक्र:- (कुछ ज्ञातव्य: - मनुष्य के इस शरीर में 11 चक्र और सिर के ऊपर 9 चक्र माने गये हैं। वे क्रमश: इस प्रकार हैं - अध:सहस्रार, अध:सहस्रारोपरि विषु, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा, लम्बिकाग्र, बिन्दु और सहस्रार तथा अर्द्धचन्द्र/अर्द्धेन्दु, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समाना/समन स्थान, उन्मना/उन्मनी और ध्रुवमण्डल।) शरीर के भीतर - **1.** अध:सहस्रार = पैर के तलुवे में, **2** अध:सहस्रारोपरि विषु = घुटनों में, **3-8** मूलाधार से आज्ञा तक के चक्र प्रसिद्ध हैं, **9.** लम्बिकाग्र = छोटी तालू के अग्रभाग में, **10.** बिन्दु = ललाट भाग में स्थित बिन्दुविसर्ग चक्र में, **11.** सहस्रार। तथा सिर के ऊपर - **1.** अर्द्धचन्द्र/अर्द्धेन्दु = सिर के ऊपर परिकल्पित कर्णिकाचक्र में , **2.** रोधिन्यां = उसके ऊपर परिकल्पित अतुलचक्र में, **3.** नादे = उसके ऊपर परिकल्पित अनाख्यचक्र में, **4.** नादान्ते = उसके ऊपर परिकल्पित सोऽहंचक्र में, **5.** शक्तौ = उसके ऊपर परिकल्पित पंचसिंहासनचक्र में, **6.** व्यापिकायां = उसके ऊपर परिकल्पित लालिमा युक्त प्रकाशात्मक चक्र, **7.** समानायां/समन स्थाने = उसके ऊपर परिकल्पित नीलिमा युक्त प्रकाशात्मक चक्र, **8.** उन्मनायां/ उन्मन्यां =

उसके ऊपर परिकल्पित विशुद्ध प्रकाशात्मक चक्र, **9.** ध्रुवमण्डले = पूर्वोक्त सभी का अधिष्ठान रूपी विशुद्ध चैतन्यात्मक चक्र।

कुछ अंग :- ब्रह्मरन्ध्रे महाबिन्दौ = चोटी के ऊपर तीनों कपाल भागों के मिलन स्थान में, कर्णयुगसन्निधौ = आंख से कान की ओर व कान के पास स्थित हड्डी पर, कर्णवेष्टनयोः = कान की ढ़कनी पर, फाले = सीमांत भाग (स्त्रियों के मांग) में, द्वादशान्ते = छाती की अन्तिम पसली के निचले भाग में, स्फिचि = नितम्ब पर, प्रपदे = पैर की अंगुलियों के अग्रभाग में, सृक्किणी =मुंह के किनारे के भाग में, दक्ष/वाम मुष्के = अण्डकोष के दाहिने व बाये अण्डों पर, दक्ष/वाम कूपरे = दाहिनी व बायी कुहनी, दक्ष/वाम दोर्मूले = दायीं व बायीं कांख पर, दक्ष/वाम शिरोभागे = दायें व बायें कपाल पर, ककुदि = कण्ठ के बीच में ऊपर उठी हुयी हड्डी पर, गलपृष्ठे = गर्दन पर।

34. पृष्ठ संख्या 190, पंक्ति संख्या 10 में मुद्रित 'मूलमन्त्र' के दक्षिणामूर्ति मत के अनुसार दो अर्थ है। पहला अर्थ है - 'ऐं क्लीं सौः' जो एकाक्षरी से पंचदशी पर्यन्त मन्त्र के उपासकों के लिये है और दूसरा है - 'ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः' जो षोडशी से पूर्णाभिषेक पर्यन्त के उपासकों के लिये है।

35. पृष्ठ संख्या 199, पंक्ति संख्या 14 से आरब्ध श्लोक पृथ्वीछन्द में है जिसे 8 व 9 अक्षरों के विभाग पूर्वक पाठ किया जाता है।

36. पृष्ठ संख्या 208, पंक्ति संख्या 13-14 में मुद्रित 'आंख बन्द कर' के पश्चात् जोड़ लें - अथवा मन्दिर न हो तो अपने सामने स्थित आवाहित देवता के सामने अपने चेहरे को वस्त्र से ढ़ककर बैठें।

37. पृष्ठ संख्या 209, पंक्ति संख्या 11 के अन्त में जोड़ लें -

तर्पण के मन्त्र निम्न प्रकार से हैं।

1. गणपति तर्पण मन्त्र :-

ॐ एक दन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।। श्रीमहागणपतिं तर्पयामि नमस्करोमि।।

2. सूर्य तर्पण मन्त्र –

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्। श्रीसूर्यं तर्पयामि नमस्करोमि।।

3. विष्णु तर्पण मन्त्र –

ॐ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्त धामभिः।।1।। इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे स्वाहा।।2।। श्रीविष्णुं तर्पयामि नमस्करोमि।।

4. शिव तर्पण मन्त्र –

ॐ कद्रुद्राय प्रचेतसे मीह्लुष्टमाय तव्यसे। वोचेम शंतमं हृदे।।1।।
तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।।2।।
श्रीशिवं तर्पयामि नमस्करोमि।।

5. देवी (शक्ति) तर्पण मन्त्र –

ॐ गौरी मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषि सहस्राक्षरा परमे व्योमन्।।
श्रीशक्तिं तर्पयामि नमस्करोमि।।

38. पृष्ठ संख्या 214 में मुद्रित चित्रों के क्रमांक नहीं छपे हैं, जो कि निम्न हैं – चित्र संख्या 11 और चित्र संख्या 12।

39. पृष्ठ संख्या 220, पंक्ति संख्या 11 में मुद्रित है –
'**सर्वविपत्प्रमोगचं**' जब कि सही यह है – '**सर्वविपत्प्रमोचनं**'।

40. पृष्ठ संख्या 258, पंक्ति संख्या 10 व 21 में मुद्रित कोष्टकों के अन्तर्गत दर्शित मन्त्र समूह केवल षोड़शी उपासकों केलिये विशेष है। अन्यों केलिये नहीं।

41. पृष्ठ संख्या 266 की पंक्ति संख्या 27 व पृष्ठ संख्या 267 की पंक्ति संख्या 01 में मुद्रित 3 ऋषि और 3 छन्द का तात्पर्य है कि जो उपासक दक्षिणामूर्ति संप्रदाय में पंचदशी मन्त्र से दीक्षित है वह पाठ

करें - **दक्षिणामूर्ति ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः**; और जो उपासक हयग्रीव संप्रदाय में पंचदशी मन्त्र से दीक्षित है वह पाठ करें - **हयग्रीव ऋषिः, गायत्रीछन्दः**; तथा जो उपासक भैरव संप्रदाय में पंचदशी मन्त्र से दीक्षित है वह पाठ करें - **आनन्दभैरव ऋषिः, पंक्तिछन्दः**।

42. पृष्ठ संख्या 273, पंक्ति संख्या 09 में जोड़ें -

कर्मों में अग्नि के नामविशेष पर विचारः -

प्रत्येक कर्म में प्रयुक्त अग्नि के अलग-अलग नाम होते हैं। समस्त कर्मो को 27 प्रमुख भागों में विभक्त कर 27 अग्नि मानी गयी हैं। उनके नाम वाचस्पत्यं के अनुसार इस प्रकार है -

'लौकिको पावको (1) ह्यग्निः प्रथमः परिकीर्तितः।
अग्निस्तु मारुतो (2) नाम गर्भाधाने प्रकीर्तितः।।
पुंसवे चमसो (3) नाम शोभनः (4) शुभकर्मसु।
सीमन्ते ह्यनलो (5) नाम प्रगल्भो (6) जातकर्मणि।।
पार्थिवो (7) नामकरणे प्राशनेऽन्नस्य वै शुचिः (8)।
सभ्य (9) नामा तु चूडायां व्रतादेशे समुद्भवः (10)।।
गोदाने सूर्य (11) नामा स्यात्केशान्ते योजकः (12) स्मृतः।
वैश्वानरो (13) विसर्गे स्याद्विवाहे बलदः (14) स्मृतः।।
चतुर्थीकर्मणि शिखी (15) धृतिरग्निस्तथापरे।
आवसथ्य (16) स्तथाधाने वैश्वदेवे तु पावकः (17)।।
ब्रह्माग्नि (16) गार्हपत्ये स्याद्दक्षिणाग्निरथेश्वरः (16)।
विष्णु (16) राहवनीये स्यादग्निहोत्रे त्रयो मताः।।
लक्षहोमेऽभीष्टदः (17) स्यात्कोटिहोमे महाशनः (17)।
एके घृतार्चिषं (17)प्राहुरग्निध्यानपरायणाः।।
रुद्रादौ तु मृडो (18) नाम शान्तिके शुभकृत् (19)तथा।
पौष्टिके वरद (20) श्चैव क्रोधाग्नि (21) श्चाभिचारके।

वश्यार्थे वश्यकृत् (22) प्रोक्तो वरदाहे तु पोषकः (23)।
उदरे जठरो (24) नाम क्रव्यादः (25) शवभक्षणे।।
समुद्रे वाडवो (26) ह्यग्निर्लये संवर्तक (27) स्तथा।
सप्तविंशतिसंख्याता (27) अग्नयः कर्मसु स्मृताः।।'

अर्थात् 1. लौकिककर्म – पावक, 2. गर्भाधान – मारुत, 3. पुंसवन – चमस, 4. शुभस्मार्तकर्म – शोभन, 5. सीमन्त – अनल, 6. जातकर्म – प्रगल्भ, 7. नामकरण – पार्थिव, 8. अन्नप्राशन – शुचि, 9. चूडा – सभ्य, 10. उपनयन – समुद्भव, 11. गोदान – सूर्य, 12. केशान्त – योजक, 13. विसर्ग – वैश्वानर, 14. विवाह – बलद, 15. चतुर्थीकर्म – शिखी/धृति, 16. श्रौतकर्म अग्निहोत्र आदि में :– आधानकर्म – आवसथ्य, वैश्वदेवकर्म – पावक, गार्हपत्य में – ब्रह्माग्नि, दक्षिणाग्नि में ईश्वर, आहवनीय में – विष्णु; 17. लक्षाहुति होम – अभीष्टद, कोटि आहुति होम – महाशन, एक हजार आहुति होम – घृतार्चिष; 18. शतरुद्र आदि – मृड, 19. शान्तिक कर्म – शुभकृत्, 20. पौष्टिक कर्म – वरद, 21. अभिचार – क्रोधाग्नि, 22. वश्यकर्म – वश्यकृत्, 23. वरदाह – पोषक, 24. उदर – जठर, 25. शवदाह – क्रव्याद, 26. समुद्र – वाडव, 27. लये – संवर्तक।

अग्नि की सप्तजिह्वाओं का नाम –

सप्तजिह्वा के वैदिक नाम मुण्डकोपनिषद् के अनुसार इस प्रकार हैं –

'काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिंगिनी विश्वरुचि च देवी लेलायमाना इति सप्तजिह्वा।'

सप्तजिह्वा के स्मार्त नाम वाचस्पत्यम् के अनुसार –

'कराली धूमिनी श्वेता लोहिता नीललोहिता।
सुवर्णा पद्मरागा च सप्तजिह्वा विभावसोः।।'

वाचस्पत्यम् में ही अग्नि की नौ (9) शक्तियों के नाम इस प्रकार बताये हैं –

'पीता श्वेताऽरुणा कृष्णा धूम्रा तीक्ष्णा स्फुलिंगिनी।
ज्वलिनी ज्वालिनी चेति कृशानोर्नव शक्तयः।।'

43. पृष्ठ संख्या 275, पंक्ति संख्या 9–10 में संकेतित 'कृष्ण पक्ष में इसके विपरीत क्रम से हवन करना है।' वह विपरीत क्रम इस प्रकार है –
'4 अः 15 अः ललितामहानित्यायै नमः स्वाहा, 4 अं चकौं अं चित्रानित्यायै नमः स्वाहा, 4 औं ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनि देवदेवि सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ह्रां ह्रीं ह्रूं रं रं रं रं रं रं रं हुं फट् स्वाहा औं ज्वालामालिनीनित्यायै नमः स्वाहा, 4 ओं स्वौं ओं सर्वमंगलानित्यायै नमः स्वाहा, 4 ऐं भमरयूं ऐं विजयानित्यायै नमः स्वाहा, 4 एं ह्रीं फ्रें स्रूं क्रों आं क्लीं ऐं ब्लूं नित्यमदद्रवे हुं फ्रें ह्रीं एं नीलपताकानित्यायै नमः स्वाहा, 4 लं हसकलरडैं हसकलरडीं हसकलरडौः लं नित्यानित्यायै नमः स्वाहा, 4 लृं ऐं क्लीं सौः लृं कुलसुन्दरीनित्यायै नमः स्वाहा, 4 ॠं ॐ ह्रीं हुं खे चे छे क्षः स्त्रीं हुं क्षें ह्रीं फट् ॠं त्वरितानित्यायै नमः स्वाहा, 4 ऋं ह्रीं शिवदूत्यै नमः ऋं शिवदूतीनित्यायै नमः स्वाहा, 4 ऊं ह्रीं क्लिन्ने ऐं क्रों नित्यमदद्रवे ह्रीं ऊं महावज्रेश्वरीनित्यायै नमः स्वाहा, 4 उं ॐ ह्रीं वह्निवासिन्यै नमः उं वह्निवासिनीनित्यायै नमः स्वाहा, 4 ईं ॐ क्रों भ्रों क्रौं झ्रौं छ्रौं ज्रौं स्वाहा ईं भेरुण्डानित्यायै नमः स्वाहा, 4 इं ॐ ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा इं नित्यक्लिन्नानित्यायै नमः स्वाहा, 4 आं ऐं भगभुगे भगिनि भगोदरि भगमाले भगावहे भगगुह्ये भगयोनि भगनिपातिनि सर्वभगवशंकरि भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वाणि भगानि मे ह्यानय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय अमोघे भगविच्चे क्षुभ क्षोभय सर्वसत्त्वान् भगवशंकरि ऐं ब्लूं जे ब्लूं भं ब्लूं मों ब्लूं हें ब्लूं हें क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्त्रीं हर ब्लें ह्रीं आं भगमालिनीनित्यायै नमः स्वाहा, 4 अं ऐं सकलह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे सौः अं कामेश्वरीनित्यायै नमः स्वाहा।'

44. पृष्ठ संख्या 341 में, श्लोक संख्या 57 है –

भूवेश्मत्रिवृत्तषोडशनागशक्र –
दिग्युग्मवस्वनलकोणगबिन्दुमध्ये।

सिंहासनोपरिगतारकपीठमध्ये,

प्रोत्फुल्लपद्मनिलयां त्रिपुरां भजेऽहं।।57।।

इसका शब्दार्थ इस प्रकार है – '**भूवेश्म** = 4 प्रवेश द्वार युक्त 3 परिधि यानि त्रैलोक्यमोहनचक्र, **त्रिवृत्त** = 3 गोलयुक्तचक्र यानि त्रिवर्गसाधक चक्र, **षोडश** = 16 पंखुड़ीवाला कमल यानि सर्वाशापरिपूरकचक्र, **नाग** = 8 पंखुड़ीवाला कमल यानि सर्वसंक्षोभिणीचक्र, **शक्र** = 14 त्रिकोणवाला चक्र यानि सर्वसौभाग्यचक्र, **दिग्युग्म** = 10 त्रिकोणवाले दो चक्र यानि सर्वार्थसाधकचक्र और सर्वरक्षाकरचक्र, **वसु** = 8 त्रिकोणवाला चक्र यानि सर्वरोगहरचक्र, **अनलकोणग** = सर्वोपरि त्रिकोण यानि सर्वसिद्धिप्रदचक्र और **बिन्दुमध्ये** = बिन्दु रूपी चक्र यानि सर्वकामप्रदचक्र के मध्य में, **सिंहासनोपरिगतारकपीठमध्ये** = ऐसी श्रीचक्र रूपी सिंहासन के ऊपर स्थित व तारकपीठ (ह्रीं) के बीच में विराजमान, **प्रोत्फुल्लपद्मनिलयां** = पूर्णरूप से खिला हुआ कमलपुष्प है निलय (आसन) जिसका ऐसी, **त्रिपुरां** = मां भगवती त्रिपुरा को, **भजेऽहं** = मैं भजता हूँ।
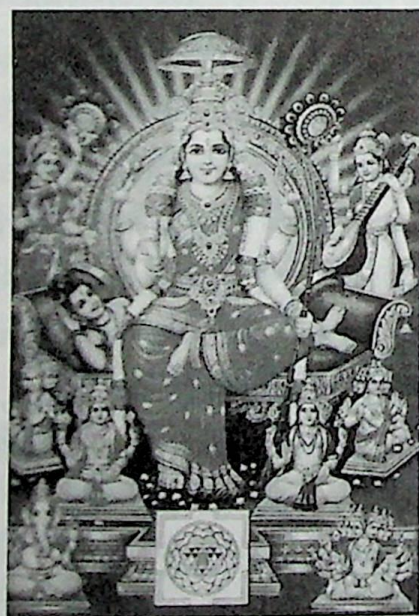
श्रीयंत्रम्
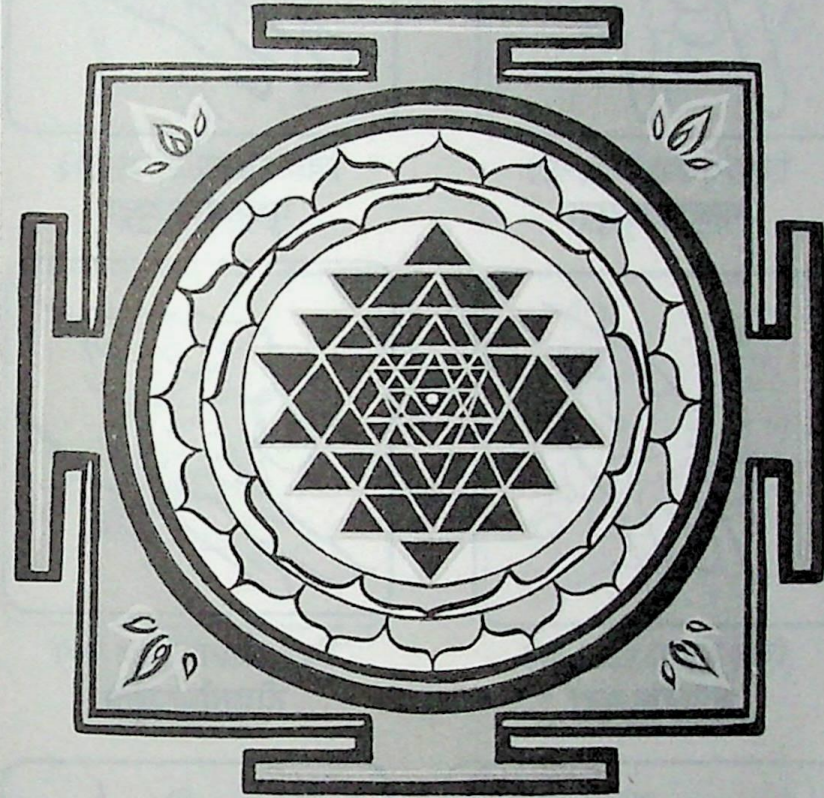
बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्मम्,
मन्वस्रनागदलशोभितषोडशारम्।
वृत्तत्रयं च धरणी सदनत्रयं च,
श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः।।
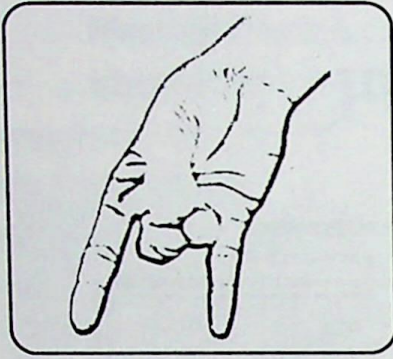
चित्र संख्या (5.1–2)
गन्धार्पण मुद्रा
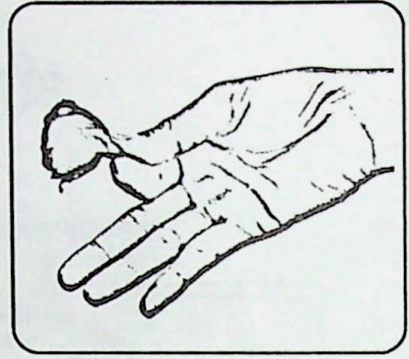
चित्र संख्या (5.1–3)
पुष्पार्पण मुद्रा
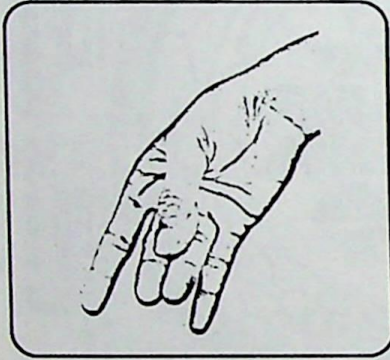
चित्र संख्या (5.1–4)
धूपार्पण मुद्रा
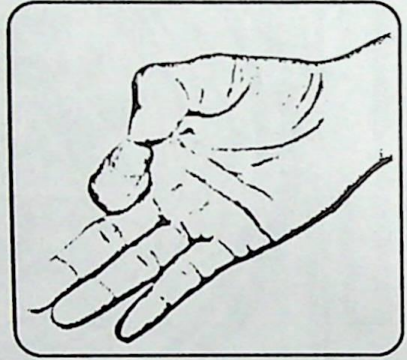
चित्र संख्या (5.1–5)
दीपार्पण मुद्रा
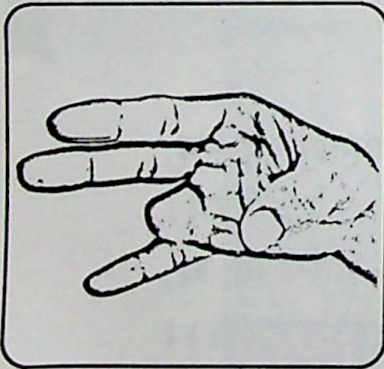
चित्र संख्या (5.1–6)
नैवेघार्पण मुद्रा
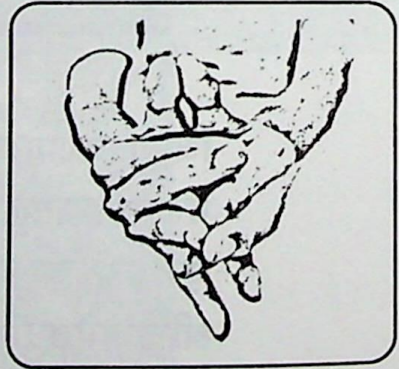
चित्र संख्या (5.7b)
धेनु मुद्रा
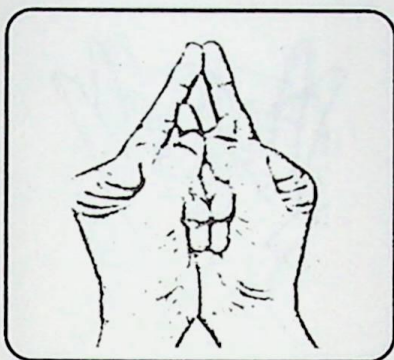
चित्र संख्या (5.8)
महा मुद्रा
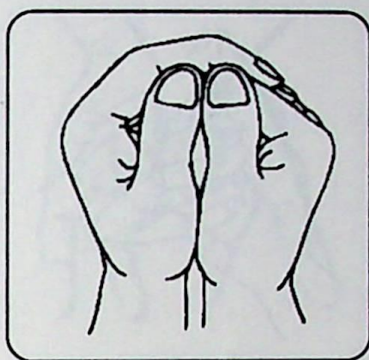
चित्र संख्या (5.9)
कुम्भ मुद्रा
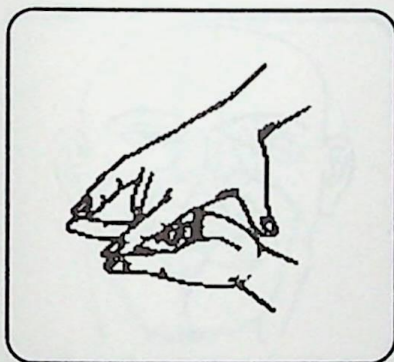
चित्र संख्या (5.10a)
कूर्म मुद्रा
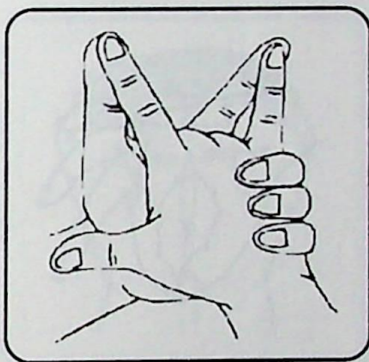
चित्र संख्या (5.10b)
कूर्म मुद्रा

चित्र संख्या (5.11a)
अस्त्र मुद्रा
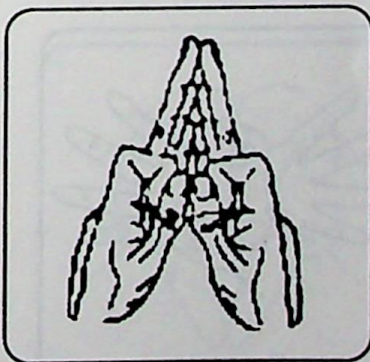
चित्र संख्या (5.11b)
अस्त्र मुद्रा
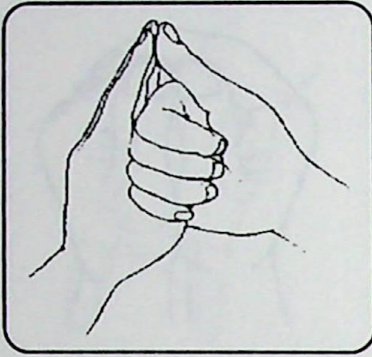
चित्र संख्या (5.13)
शंख मुद्रा
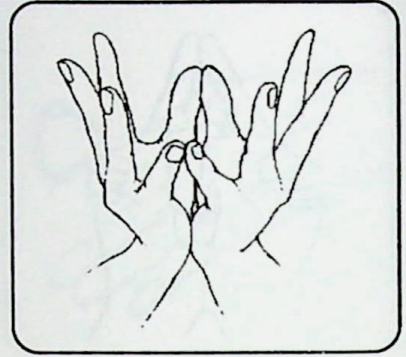
चित्र संख्या (5.16)
पंकज मुद्रा
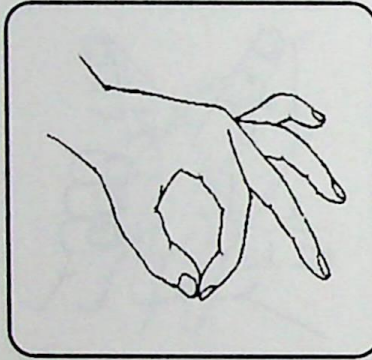
चित्र संख्या (5.19)
चिन्मुद्रा
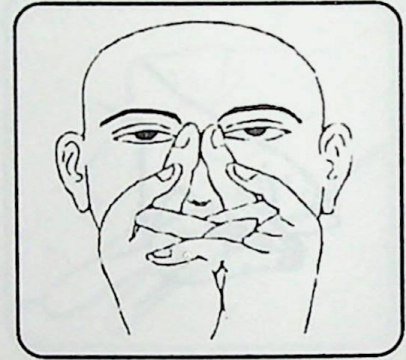
चित्र संख्या (5.28-9)
महायोनि मुद्रा
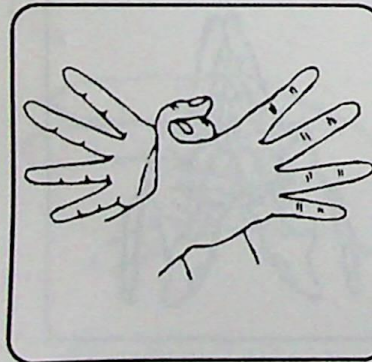
चित्र संख्या (5.29)
गुरुड़ मुद्रा
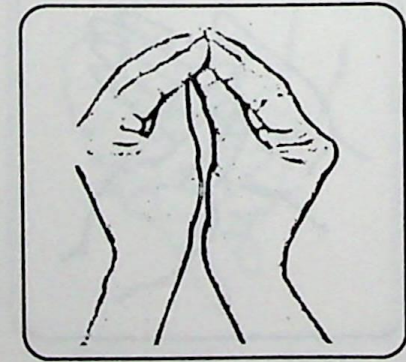
चित्र संख्या (5.30 a)
सूकरी मुद्रा
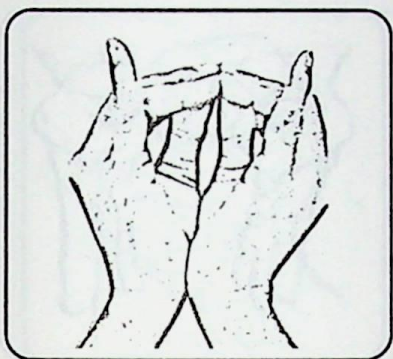
चित्र संख्या (5.30b)
हंसी मुद्रा

चित्र संख्या (5.31-2a)
अंकुश मुद्रा
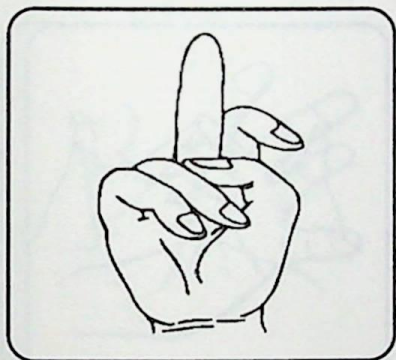
चित्र संख्या (5.31-2b)
अंकुश मुद्रा
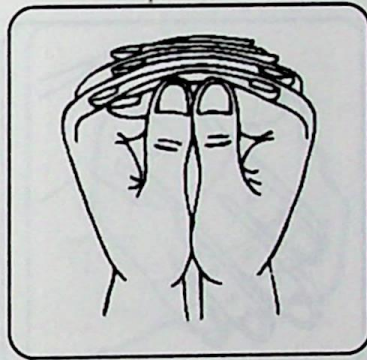
चित्र संख्या (5.31-3)
गदा मुद्रा
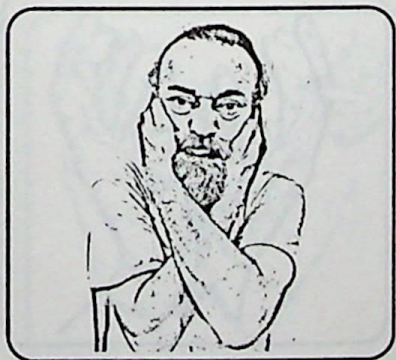
चित्र संख्या (5.31-4a)
पाश मुद्रा
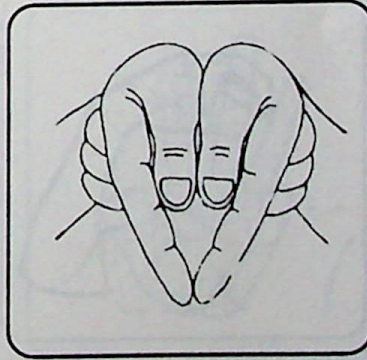
चित्र संख्या (5.31-4b)
पाश मुद्रा
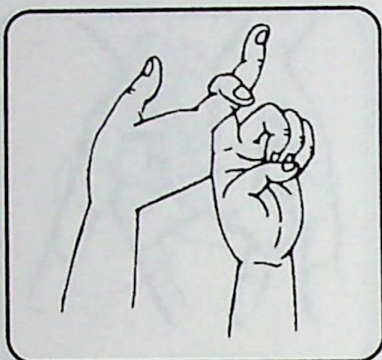
चित्र संख्या (5.31-4c)
पाश मुद्रा
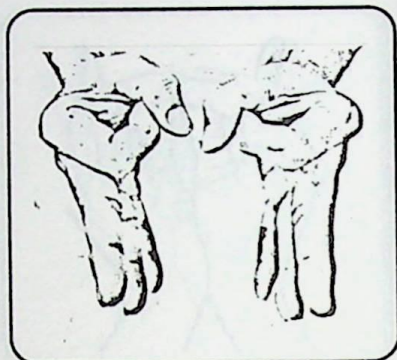
चित्र संख्या (5.31-5)
अक्षमाला मुद्रा
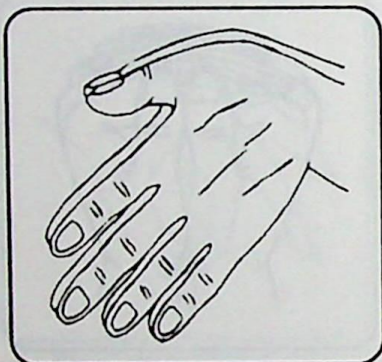
चित्र संख्या (5.31-6)
परशु मुद्रा
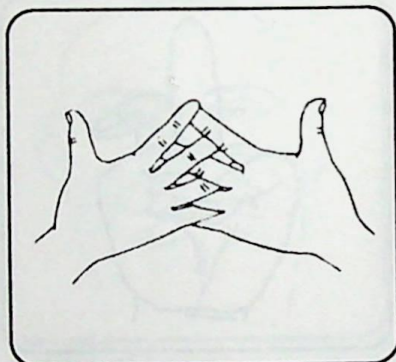
चित्र संख्या (5.31-7)
वज्र (कुलिश) मुद्रा
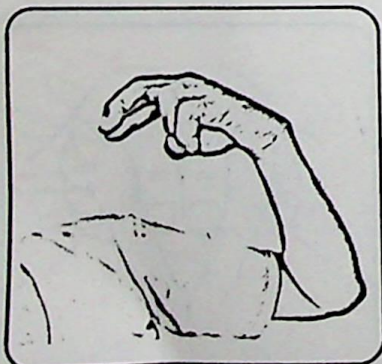
चित्र संख्या (5.31- 8)
धनुर्मुद्रा
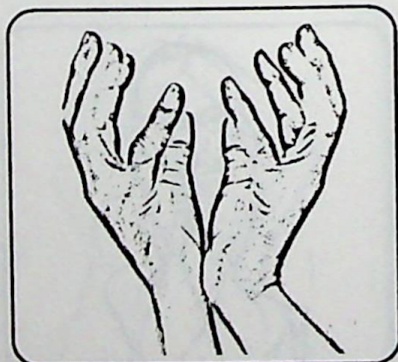
चित्र संख्या (5.31-9)
कुण्डिका मुद्रा

चित्र संख्या (5.31-10)
दण्ड मुद्रा
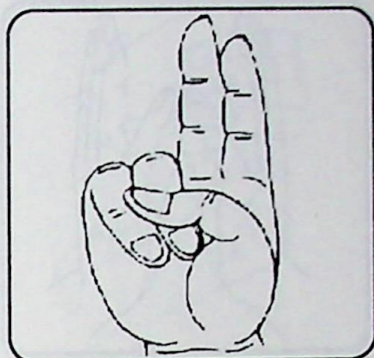
चित्र संख्या (5.31-11)
खड्ग मुद्रा
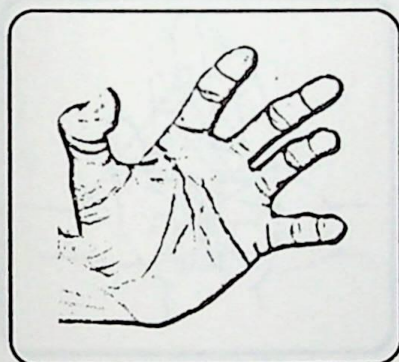
चित्र संख्या (5.31-12)
चर्म (ढाल) मुद्रा
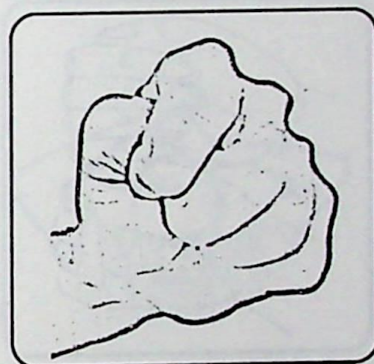
चित्र संख्या (5.31-13)
घण्टा मुद्रा
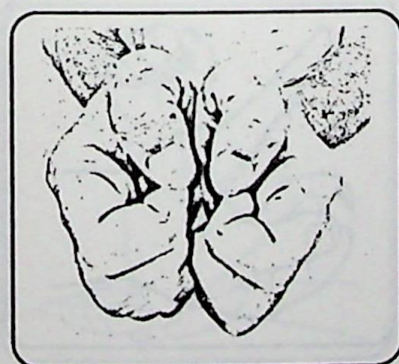
चित्र संख्या (5.31-14)
सुरभाजन मुद्रा

चित्र संख्या (5.31-15)
त्रिशूल मुद्रा
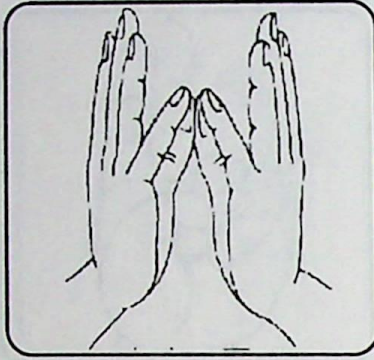
चित्र संख्या (5.31-16)
सुदर्शन (चक्र) मुद्रा
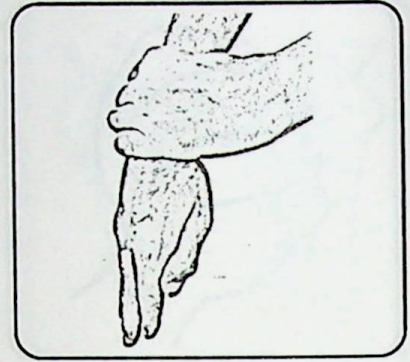
चित्र संख्या (5.31-17)
हल मुद्रा
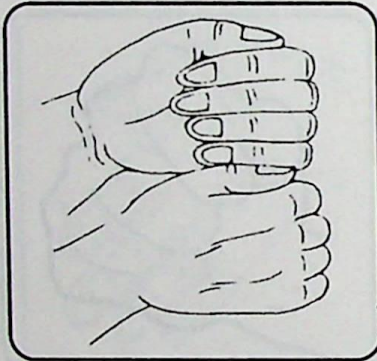
चित्र संख्या (5.31-18)
मुसल मुद्रा
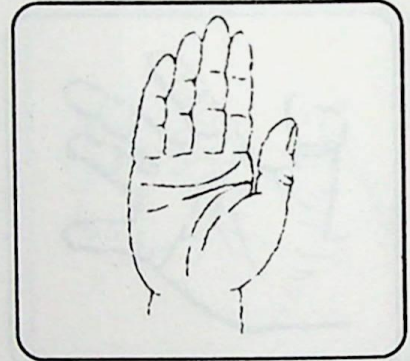
चित्र संख्या (5.31-19)
अभय/वरद मुद्रा
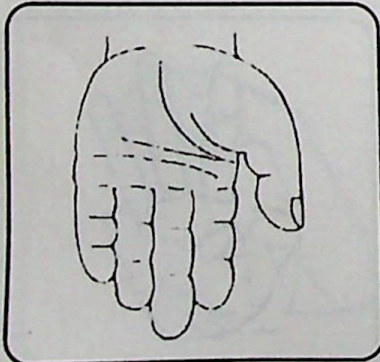
चित्र संख्या (5.31-20)
कृपा/वर मुद्रा
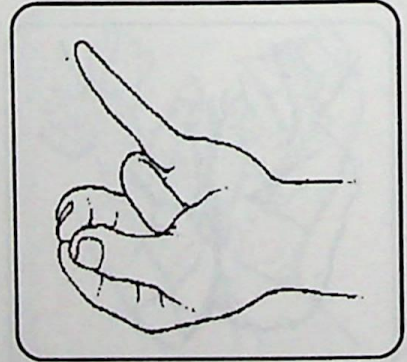
चित्र संख्या (5.32a)
शिरो (मुण्ड) मुद्रा
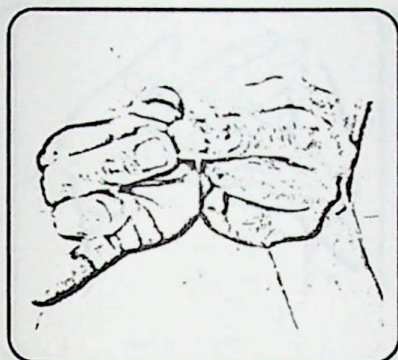
चित्र संख्या (5.32b)
शिरो मुद्रा
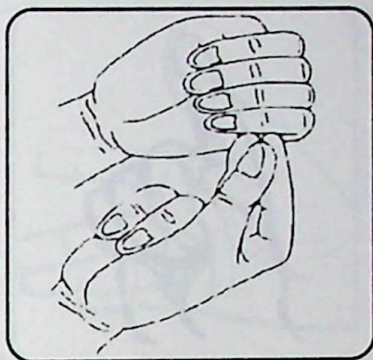
चित्र संख्या (5.32c)
शिरो (मुण्ड) मुद्रा
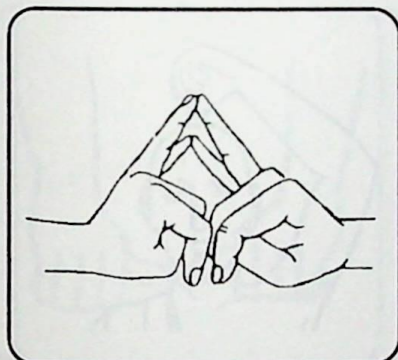
चित्र संख्या (5.33a)
शक्ति मुद्रा
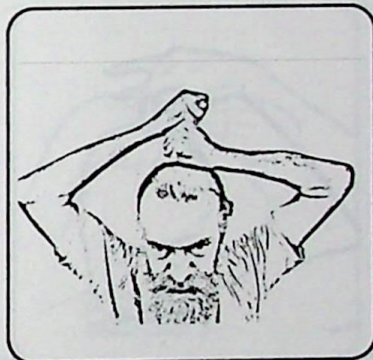
चित्र संख्या (5.33b)
शक्ति मुद्रा

चित्र संख्या (5.34a)
मुद्गर मुद्रा
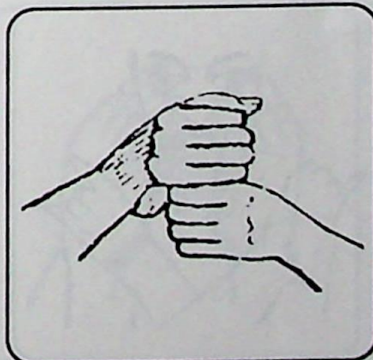
चित्र संख्या (5.34b)
मुद्गर मुद्रा

चित्र संख्या (5.35)
शत्रुजिह्वाग्र मुद्रा
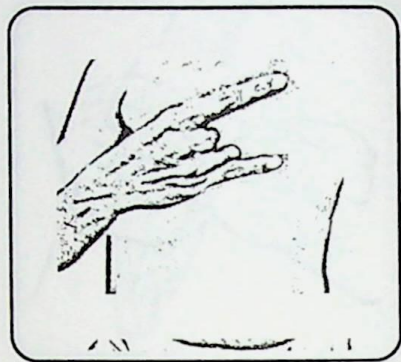
चित्र संख्या (5.36-1)
न्यास-हृदय मुद्रा

चित्र संख्या (5.36-2)
न्यास-शिरो मुद्रा
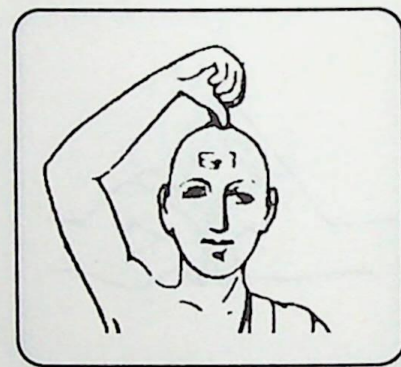
चित्र संख्या (5.36-3)
न्यास-शिरो मुद्रा

चित्र संख्या (5.36-4)
न्यास-कवच मुद्रा
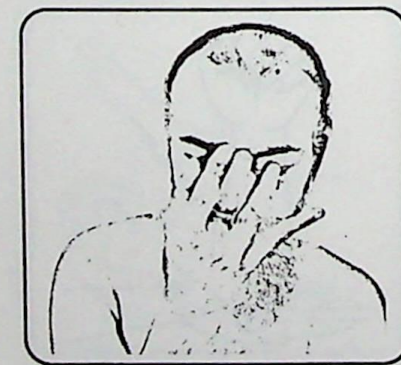
चित्र संख्या (5.36-5)
न्यास-नेत्रत्रय मुद्रा
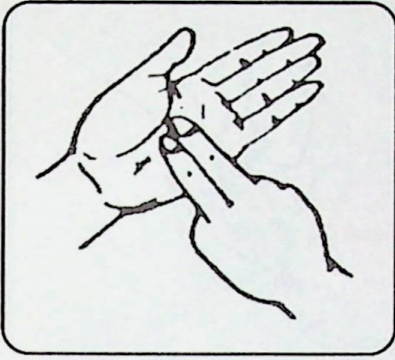
चित्र संख्या (5.36-6)
न्यास-करतल मुद्रा
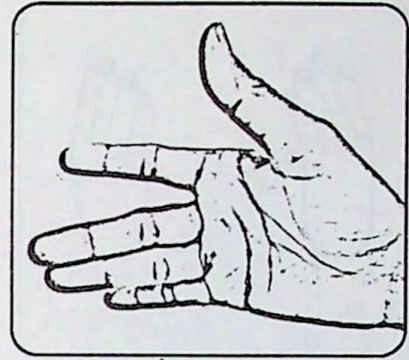
चित्र संख्या (5.37)
विसर्जन मुद्रा
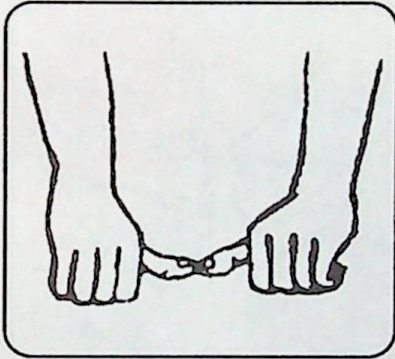
चित्र संख्या (5.38-1a)
सुमुखी मुद्रा
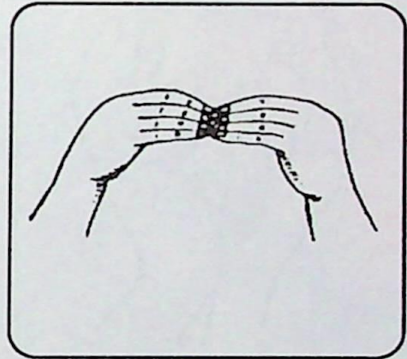
चित्र संख्या (5.38-1b)
सुमुखी मुद्रा
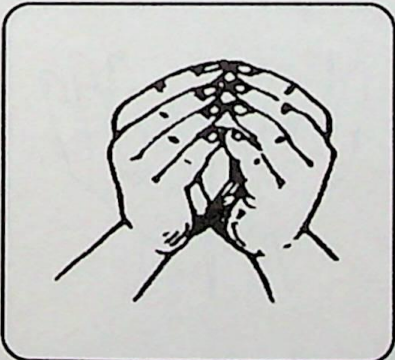
चित्र संख्या (5.38-2)
सम्पुट मुद्रा
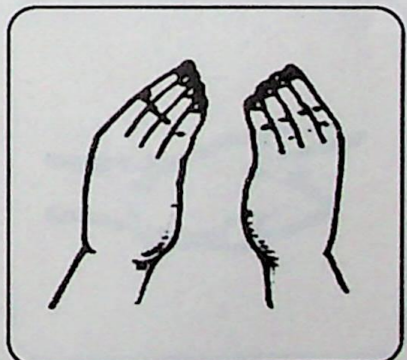
चित्र संख्या (5.38-3)
वितत मुद्रा
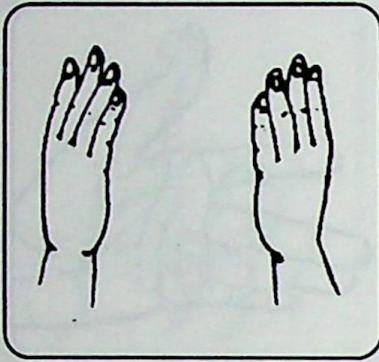
चित्र संख्या (5.38-4)
विस्तृत मुद्रा

चित्र संख्या (5.38-5a)
मुकुली मुद्रा
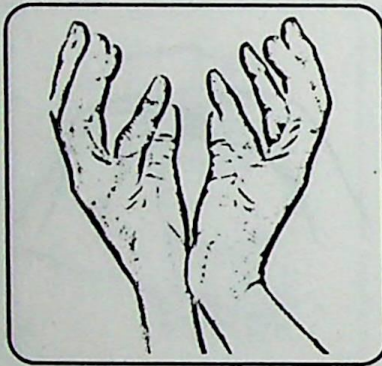
चित्र संख्या (5.38-5b)
मुकुला मुद्रा
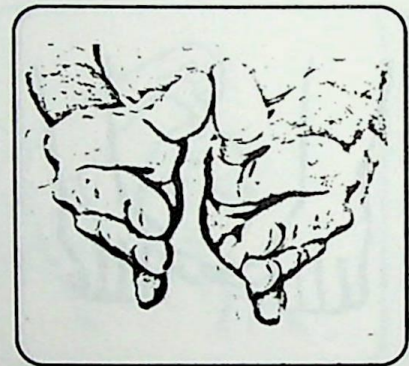
चित्र संख्या (5.39)
योग मुद्रा
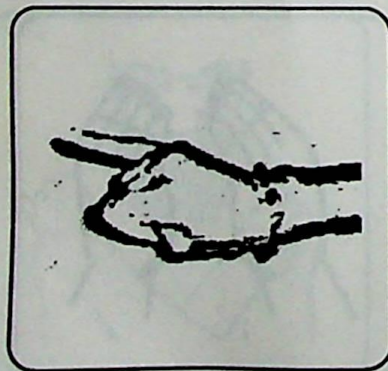
चित्र संख्या (5.40a)
ज्वालिनी मुद्रा
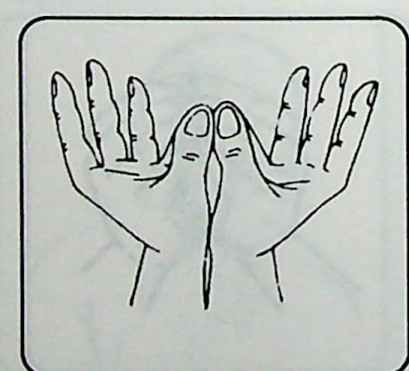
चित्र संख्या (5.40b)
ज्वालिनी मुद्रा

गौरीतिलकमण्डलम् = एकलिंगतोभद्रम्
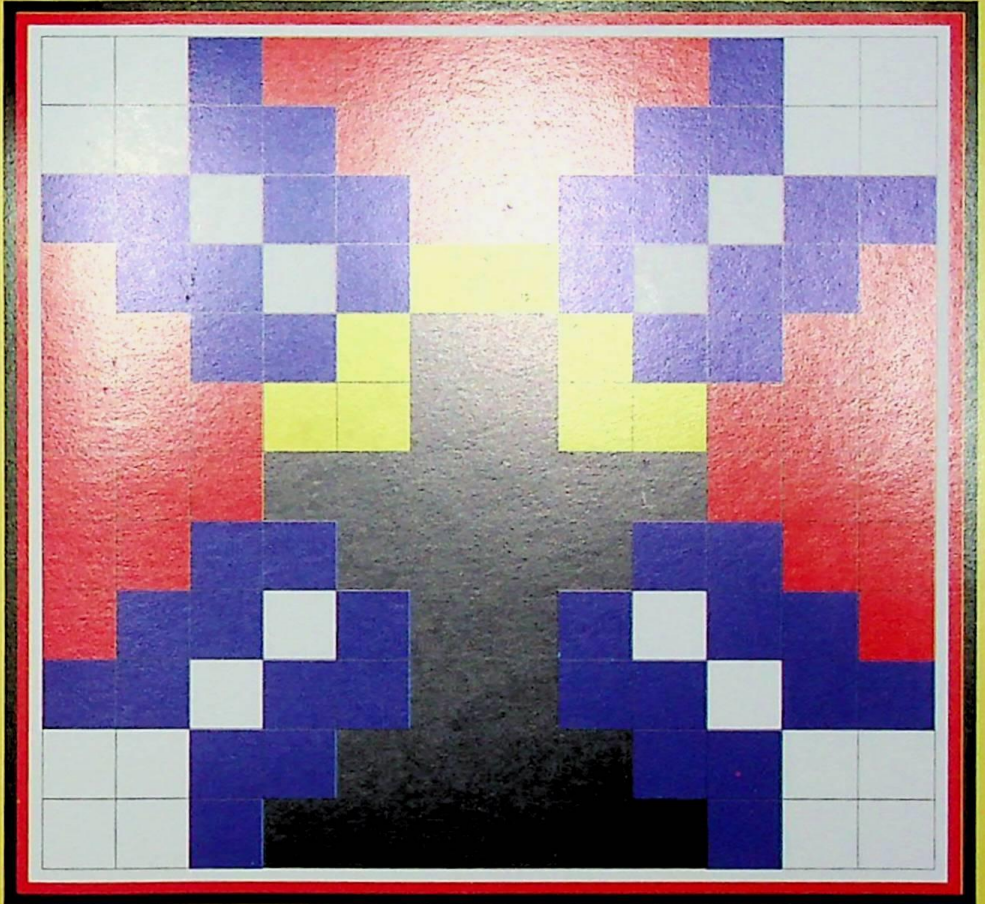
तिर्यगूर्ध्वगता रेखाः कार्याः स्निग्धास्त्रयोदश।
कोणेन्दुस्त्रिपदः कार्यः शृंखलास्त्रिपदाः स्मृताः।।
वल्ली तु त्रिपदा नीला भद्रं रक्तं प्रकल्पयेत्।
पदैर्द्वादशभिः स्पष्टमुत्तरे पूर्वदक्षिणे।।
पश्चिमायां महारुद्रमष्टाविंशतिकोष्ठकैः।
लिंगपार्श्वे तथा मूर्ध्नि अष्टौ कोष्ठाः सुपीतकाः।।
लिंगमेकं तथा गौर्यास्तिस्रः स्युरत्र मण्डले।
पूजयेन्मण्डलं चैतत्तस्य गौरी प्रसीदति।।